Chapter तीन

कृष्ण जन्म

इस अध्याय में बतलाया गया है कि भगवान् कृष्ण जिनका आदि रूप हरि है विष्णु रूप में प्रकट हुए जिससे उनके माता-पिता यह समझ लें कि उनका पुत्र भगवान् है। चूँकि वे कंस से भयभीत थे अत: जब भगवान् सामान्य बालक के रूप में प्रकट हुए तो वे उन्हें नन्द महाराज के घर गोकुल ले गए।

माता देवकी *सच्चिदानन्द* होने के कारण इस भौतिक जगत से सम्बद्ध नहीं है। भगवान् चार हाथों से युक्त प्रकट हुए मानो उनके गर्भ से उत्पन्न हुए हों। भगवान् के इस विष्णु रूप में देखकर वसुदेव विस्मित रह गए और उन्होंने देवकी समेत दिव्य हर्ष में आकर मन ही मन ब्राह्मणों को दस हजार गाएँ दान में दे डालीं। फिर वसुदेव ने भगवान् की स्तुति परम पुरुष, परब्रह्म, परमात्मा के सम्बोधनों से की जो द्वैत से परे हैं और भीतर तथा बाहर से सर्वव्यापक हैं। समस्त कारणों के कारण भगवान् भौतिक जगत से परे हैं यद्यपि वे ही इस भौतिक जगत के स्रष्टा हैं। जब वे इस जगत में परमात्मा रूप में प्रविष्ट होते हैं, तो वे सर्वव्यापक होते हुए (*अण्डान्तरस्थ परमाणुचयान्तरस्थम्*) भी दिव्य बने रहते हैं। इस भौतिक जगत के सृजन, पालन तथा संहार के लिए वे *गुणावतारों*—यथा ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर के रूप में प्रकट होते हैं। इस तरह वसुदेव ने भगवान् की सार्थक प्रार्थना की। उनके बाद देवकी ने भी भगवान् की दिव्य प्रकृति का वर्णन करते हुए प्रार्थना की। कंस के डर से तथा इस अभिलाषा से कि नास्तिक तथा अभक्तजन भगवान् को समझ न पाएँ देवकी ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे इस चतुर्भुज रूप को त्यागकर दो हाथ वाले सामान्य बालक के रूप में प्रकट हों।

भगवान् ने वसुदेव तथा देवकी को उन दो अन्य अवतारों का स्मरण कराया जो पहले ही उनके पुत्र रूप में प्रकट हो चुके थे। वे पृश्निगर्भ तथा वामनदेव के रूप में प्रकट हो चुके थे और अब तीसरी बार वे उनकी इच्छा-पूर्ति के लिए देवकी के पुत्र रूप में प्रकट हो रहे थे। तब भगवान् ने कंस के

कारागार में बन्दी वसुदेव तथा देवकी के आवास को छोड़ने का निश्चय किया और ठीक उसी समय योगमाया ने यशोदा की पुत्री के रूप में जन्म लिया। योगमाया की ही व्यवस्था द्वारा वसुदेव बन्दीगृह को त्यागने एवं कंस के हाथों से बालक को बचाने में समर्थ हो सके। जब वसुदेव कृष्ण को नन्द महाराज के घर लाए तो उन्होंने देखा कि योगमाया की व्यवस्था से यशोदा तथा दूसरे सारे लोग सोए हुए थे। इस तरह उन्होंने योगमाया को यशोदा की गोद से लेकर बदले में कृष्ण को रख दिया। फिर वे योगमाया को अपनी पुत्री के रूप में लेकर वापस लौट आए। उन्होंने योगमाया को देवकी के बिस्तर में रख दिया और पूर्ववत् बन्दी बन गए। गोकुल में यशोदा को यह पता नहीं चल पाया कि उन्हें लड़का हुआ या लड़की।

श्रीशुक उवाच
अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ।
यर्ह्योवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥
दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् ।
मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥
नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः ।
द्विजालिकुलसन्नादस्तवका वनराजयः ॥ ३ ॥
ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ।
अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत ॥ ४ ॥
मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ।
जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुन्दुभयः समम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—भगवान् के आविर्भाव के समय; सर्व—चारों ओर; गुण-उपेतः—भौतिक गुणों से सम्पन्न; कालः—उपयुक्त समय; परम-शोभनः—अत्यन्त शुभ तथा सभी दृष्टियों से उपयुक्त; यर्हि—जब; एव—निश्चित रूप से; अजन जन्म-ऋक्षम्—रोहिणी नक्षत्र समूह; शान्त-ऋक्ष—सारे नक्षत्र शान्त थे; ग्रह-तारकम्—तथा ग्रह एवं तारे (यथा अश्विनी); दिशः—सारी दिशाएँ; प्रसेदुः—अत्यन्त शुभ तथा शान्त प्रतीत हुईं; गगनम्—आकाश; निर्मल-उडु-गण-उदयम्—जिसमें सारे शुभ नक्षत्र दृष्टिगोचर थे; मही—पृथ्वी; मङ्गल-भूयिष्ठ-पुर-ग्राम-व्रज-आकराः—जिसके अनेक नगर, ग्राम, गोचर भूमि तथा खानें शुभ तथा निर्मल हो गईं; नद्यः—नदियाँ; प्रसन्न-सलिलाः—जल स्वच्छ हो गया; ह्रदाः—झीलें या जलाशय; जलरुह-श्रियः—चारों ओर कमलों के खिलने से अत्यन्त सुन्दर लगने लगा; द्विज-अलि-कुल-सन्नाद-स्तवकाः—पक्षियों (विशेषतया कोयल) तथा मधुमक्खियों का समूह मधुर ध्वनि में कीर्तन करने लगा, मानो भगवान् की स्तुति कर रहे हों; वन-राजयः—हरे वृक्ष भी देखने में मनोहर लग रहे थे; ववौ—बहने लगी; वायुः—वायु, मन्द हवा; सुख-स्पर्शः—छूने में सुहावनी; पुण्य-गन्ध-वहः—सुगन्ध से पूरित; शुचिः—धूल से रहित; अग्नयः च—तथा यज्ञस्थलों की अग्नियाँ; द्विजातीनाम्—ब्राह्मणों की; शान्ताः—शान्त; तत्र—वहाँ; समिन्धत—जलती हुई; मनांसि—ब्राह्मणों के मन (जो कंस से भयभीत थे); आसन्—हो गए; प्रसन्नानि—पूर्ण तुष्ट तथा उत्पात से रहित; साधूनाम्—ब्राह्मणों के, जो सबके सब वैष्णव भक्त थे; असुर-द्रुहाम्—जो धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न करते समय कंस तथा अन्य असुरों द्वारा सताए गए थे; जायमाने—जन्म होने से; अजने—अजन्मे, भगवान् विष्णु के; तस्मिन्—उस स्थान में; नेदुः—बज उठीं; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; समम्—एकसाथ (ऊपरी लोकों से)।

तत्पश्चात् भगवान् के आविर्भाव की शुभ बेला में सारा ब्रह्माण्ड सतोगुण, सौन्दर्य तथा शान्ति से युक्त हो गया। रोहिणी नक्षत्र तथा अश्विनी जैसे तारे निकल आए। सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य नक्षत्र एवं ग्रह अत्यन्त शान्त थे। सारी दिशाएँ अत्यन्त सुहावनी लगने लगीं और मनभावन नक्षत्र निरभ्र आकाश में टिमटिमाने लगे। नगरों, ग्रामों, खानों तथा चरागाहों से अलंकृत पृथ्वी सर्व-मंगलमय प्रतीत होने लगी। निर्मल जल से युक्त नदियाँ प्रवाहित होने लगीं और सरोवर तथा विशाल जलाशय कमलों तथा कुमुदिनियों से पूर्ण होकर अत्यधिक सुन्दर लगने लगे। फूलों-पत्तियों से पूर्ण एवं देखने में सुहावने लगने वाले वृक्षों और हरे पौधों में कोयलों जैसे पक्षी तथा भौरों के झुण्ड देवताओं के लिए मधुर ध्वनि में गुंजार करने लगे। निर्मल मन्द वायु बहने लगी जिसका स्पर्श सुखद था और जो फूलों की गन्ध से युक्त थी। जब कर्मकाण्ड में लगे ब्राह्मणों ने वैदिक नियमानुसार अग्नि प्रज्ज्वलित की तो अग्नि इस वायु से अविचलित रहती हुई स्थिर भाव से जलने लगी। इस तरह जब अजन्मा भगवान् विष्णु प्रकट होने को हुए तो कंस जैसे असुरों तथा उसके अनुचरों द्वारा सताए गए साधुजनों तथा ब्राह्मणों को अपने हृदयों के भीतर शान्ति प्रतीत होने लगी और उसी समय स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बज उठीं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में भगवान् कहते हैं कि ''मेरा जन्म तथा कार्यकलाप सभी दिव्य हैं। जो मुझे यथार्थत: समझ लेता है, वह तुरन्त वैकुण्ठ जाने के योग्य बन जाता है।'' भगवान् का जन्म सामान्य व्यक्ति जैसा नहीं होता, जिसे अपने पूर्वकर्म के अनुसार भौतिक शरीर धारण करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। भगवान् के प्राकटय की व्याख्या पिछले अध्याय में हो चुकी है वे स्वेच्छा से प्रकट होते हैं।

जब भगवान् के प्राकट्य का समय आ गया तो नक्षत्र शुभ हो गए। रोहिणी नक्षत्र का ज्योतिष-फल भी प्रधान था क्योंकि यह नक्षत्र अत्यन्त शुभ माना जाता है। रोहिणी ब्रह्मा के अधीन है और ब्रह्मा विष्णु से उत्पन्न हैं। रोहिणी अजन्मा विष्णु के जन्म के समय विष्णु से ही जन्म लेकर प्रकट होता है। ज्योतिष के अनुसार नक्षत्रों की स्थिति के अतिरिक्त विभिन्न ग्रहों की विभिन्न स्थितियों के कारण शुभ तथा अशुभ क्षण होते हैं। कृष्ण-जन्म के समय सारे ग्रहों का अपने आप ऐसा तालमेल बैठा कि सब कुछ शुभ बन गया।

उस समय पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण सभी दिशाओं में शान्ति तथा सम्पन्नता का वातावरण था। आकाश में शुभ नक्षत्र दिख रहे थे और पृथ्वी पर सारे नगरों, सारे ग्रामों या चरागाहों में तथा हर प्राणी के मन के भीतर सौभाग्य के लक्षण प्रकट हो रहे थे। नदियाँ जल से पूर्ण थीं और सरोवर सुन्दर कमलों से सुशोभित थे। जंगल सुन्दर पक्षियों तथा मोरों से पूर्ण थे। जंगल के सारे पक्षी मधुर ध्वनि से गाने लगे और मोर मोरनियों के साथ नाचने लगे। सुखद मन्द वायु विभिन्न फूलों की गन्ध लेकर प्रवाहित होने लगी जिसका स्पर्श अत्यन्त सुखद था। अग्नि यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों को यज्ञ करने के लिए अपने घर अत्यन्त सुखद प्रतीत होने लगे। आसुरी राजाओं के उत्पातों के कारण ब्राह्मणों के घरों की यज्ञ-अग्नि प्राय: बुझ चुकी थी, किन्तु वही अब पुन: शान्तिपूर्वक जलने लगी। यज्ञों पर पाबन्दी लगाए जाने से ब्राह्मण मन, बुद्धि तथा कर्म से अत्यन्त संतप्त थे। किन्तु कृष्ण के आविर्भाव के समय उनके मन स्वत: प्रसन्नता से भर उठे क्योंकि आकाश में भगवान् के प्राकट्य को घोषित करने वाली दिव्य ध्वनि जोर से सुनाई पड़ने लगी थी।

कृष्ण-जन्म के अवसर पर समस्त ब्रह्माण्ड में ऋतु-परिवर्तन हो गया। यद्यपि कृष्ण भादों (सितम्बर) मास में उत्पन्न हुए थे, किन्तु ऐसा लग रहा था मानो वसन्त हो। वायुमण्डल शीतल था और नदियाँ तथा जलाशय ऐसे लग रहे थे मानो शरद ऋतु हो। कमल तथा कुमुदिनियाँ दिन में खिलती हैं, किन्तु जब कृष्ण प्रकट हुए तो आधी रात में भी वे खिली थीं और सुगन्धित वायु बह रही थी। कंस के उत्पातों के कारण सारे वैदिक कर्मकाण्ड बन्द हो चुके थे। ब्राह्मण तथा साधुगण शान्त चित्त होकर वैदिक अनुष्ठान नहीं कर पा रहे थे, किन्तु अब वे ही ब्राह्मण बिना उत्पात के दैनिक अनुष्ठान करके अत्यन्त प्रसन्न थे। असुरों का कार्य है सुरों, भक्तों तथा ब्राह्मणों को सताना, किन्तु कृष्ण के आविर्भाव के समय ये भक्त तथा ब्राह्मण व्यवधानरहित थे।

जगु: किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवु: सिद्धचारणा: ।
विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभि: समं मुदा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

जगु:—शुभ गीत गाए; किन्नर-गन्धर्वा:—विभिन्न लोकों के निवासी किन्नर तथा गन्धर्व; तुष्टुवु:—स्तुतियाँ कीं; सिद्ध-चारणा:—स्वर्ग के अन्य निवासी सिद्ध तथा चारणों ने; विद्याधर्य: च—और विद्याधरियाँ, स्वर्गलोक के अन्य निवासी; ननृतु:—आनन्दपूर्वक नृत्य किया; अप्सरोभि:—अप्सराओं के, स्वर्ग की सुन्दर नर्तिकाएँ; समम्—साथ; मुदा—प्रमुदित होकर।

किन्नर तथा गन्धर्व शुभ गीत गाने लगे, सिद्धों तथा चारणों ने शुभ प्रार्थनाएँ कीं तथा

अप्सराओं के साथ विद्याधरियाँ प्रसन्नता से नाचने लगीं।

मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ।
मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ।
निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने ॥ ७॥
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ।
आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥ ८॥

शब्दार्थ

मुमुचुः—बरसाया; मुनयः—मुनियों ने; देवाः—तथा देवताओं ने; सुमनांसि—सुन्दर तथा सुगन्धित फूल; मुदा अन्विताः—प्रसन्नचित्त होकर; मन्दम् मन्दम्—धीरे-धीरे; जल-धराः—बादल; जगर्जुः—गरजने लगे; अनुसागरम्—समुद्र की लहरों की ध्वनि के साथ; निशीथे—अर्धरात्रि में; तमः-उद्भूते—घना अंधकार होने पर; जायमाने—प्रकट होने पर; जनार्दने—भगवान् विष्णु के; देवक्याम्—देवकी के गर्भ में; देव-रूपिण्याम्—भगवान् के रूप में (आनन्दचिन्मय रस प्रतिभाविताभिः); विष्णुः—भगवान् विष्णु; सर्व-गुहा-शयः—हर एक के हृदय में स्थित; आविरासीत्—प्रकट हुए; यथा—जिस प्रकार; प्राच्याम् दिशि—पूर्व दिशा में; इन्दुः इव—पूर्ण चन्द्रमा के समान; पुष्कलः—सब प्रकार से पूर्ण।

देवताओं तथा महान् साधु पुरुषों ने प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा की और आकाश में बादल उमड़ आए तथा मन्द स्वर से गर्जन करने लगे मानो समुद्र की लहरों की ध्वनि हो। तब हर हृदय में स्थित पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु रात्रि के गहन अंधकार में देवकी के हृदय से उसी तरह प्रकट हुए जिस तरह पूर्वी क्षितिज में पूर्ण चन्द्रमा उदय हुआ हो क्योंकि देवकी श्रीकृष्ण की ही कोटि की थीं।

तात्पर्य : जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* (५.३७) में कहा गया है—

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभिस्

ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः ।

गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

इस श्लोक से पता चलता है कि कृष्ण तथा उनके परिकर एक ही आध्यात्मिक शक्ति (*आनन्दचिन्मयरस*) के होते हैं। कृष्ण के पिता, उनकी माता, उनके गोपमित्र तथा गाएँ—सभी कृष्ण के अंश हैं जैसाकि 'ब्रह्मविमोहन लीला' में बतलाया जाएगा। जब ब्रह्मा ने भगवान् कृष्ण की सर्वश्रेष्ठता की परीक्षा करने के लिए कृष्ण के संगियों का हरण कर लिया तो भगवान् ने अनेक ग्वालों तथा बछड़ों के रूप में अपना पुनः विस्तार कर लिया और ब्रह्मा ने देखा कि ये सभी *विष्णुमूर्तियाँ* हैं। देवकी भी कृष्ण की अंश हैं इसीलिए इस श्लोक में कहा गया है *देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः*।

भगवान् के आविर्भाव के समय सारे मुनि तथा देवता प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा करने लगे। समुद्रतट पर मन्द लहरों की ध्वनि हो रही थी और समुद्र के ऊपर आकाश में बादल थे, जो अत्यन्त मनोहारी गर्जना करने लगे।

जब इस तरह का वातावरण बन गया तो प्रत्येक जीव के हृदय में निवास करने वाले भगवान् विष्णु अँधेरी रात में देवीस्वरूपा देवकी के समक्ष प्रकट हुए। उस समय भगवान् विष्णु के प्राकट्य की उपमा पूर्वी अन्तरिक्ष में पूर्ण चन्द्रमा के उदय होने से दी जा सकती है। यहाँ यह आक्षेप किया जा सकता है कि कृष्ण तो कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन उत्पन्न हुए तो फिर पूर्ण चन्द्रोदय कैसे हुआ? इसका उत्तर यह हुआ कि कृष्ण चन्द्र वंश में उत्पन्न हुए थे अत: भले ही उस रात चन्द्रमा अपूर्ण रहा हो, किन्तु भगवान् जिस कुल में प्रकट हुए उसमें चन्द्रमा साक्षात् आदि पुरुष हैं, अत: चन्द्रमा अत्यधिक प्रसन्न था और कृष्णकृपा से वह पूर्णरूप में प्रकट हो सका। भगवान् का स्वागत करने के लिए कृष्णपक्ष का चाँद हर्ष के मारे पूर्ण चन्द्रमा बन गया।

श्रीमद्भागवत के अनेक पाठों में *देवरूपिण्याम्* शब्द के स्थान पर *विष्णुरूपिण्याम्* पाठ मिलता है। प्रत्येक दशा में अर्थ यही है कि देवकी का स्वरूप भगवान् के ही सदृश आध्यात्मिक है। भगवान् सच्चिदानन्द विग्रह हैं और देवकी भी वही हैं। अत: जिस विधि से सच्चिदानन्दविग्रह भगवान् देवकी के गर्भ से प्रकट हुए उसके विषय में कोई त्रुटि नहीं निकाली जा सकती।

जिन्हें यह पूरी तरह समझ नहीं है कि भगवान् का प्राकट्य तथा तिरोधान दिव्य होते हैं (*जन्म कर्म च मे दिव्यम्*) वे कभी-कभी आश्चर्यचकित रह जाते हैं कि भगवान् सामान्य बालक की तरह जन्म ले सकते हैं। किन्तु वास्तविकता यही है कि भगवान् का जन्म कभी भी सामान्य नहीं होता। भगवान् पहले से हर प्राणी के हृदय में अन्तर्यामी परमात्मा के रूप में स्थित हैं। अत: देवकी के हृदय में संपूर्ण शक्ति के साथ उपस्थित रहने से वे उनके शरीर के बाहर भी प्रकट होने में समर्थ थे।

बारह महाजनों में से भीष्म-देव भी एक हैं (*स्वयम्भूर्नारद: शम्भु: कुमार: कपिलो मनु: प्रह्लादो जनको भीष्म:*)। *श्रीमद्भागवत* (१.९.४२) में भीष्म जो भक्तों द्वारा अनुसरणीय हैं कहते हैं कि भगवान् हर व्यक्ति के हृदय में उसी प्रकार स्थित हैं जिस प्रकार हर व्यक्ति के सिर के ऊपर सूर्य रहता है। भले ही सूर्य करोड़ों व्यक्तियों के सिर के ऊपर हो, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सूर्य अलग-

अलग स्थित है। इसी तरह अचिन्त्य शक्तियों के कारण भगवान् भले ही हर एक के हृदय में स्थित हों, किन्तु वे अलग-अलग नहीं हैं। *एकत्वमनुपश्यत:* (*ईषोपनिषद्* ७)। भगवान् एक हैं, किन्तु वे अपनी अचिन्त्य शक्ति के द्वारा हर प्राणी के हृदय में प्रकट हो सकते हैं। इस तरह भगवान् देवकी के हृदय में रहते हुए भी उनके पुत्र रूप में प्रकट हुए। इसीलिए *विष्णु-पुराण* के अनुसार जैसाकि *वैष्णव-तोषणी* में उद्धृत किया है, भगवान् सूर्य के समान प्रकट हुए (*अनुग्रहास्य*)। *ब्रह्म-संहिता* (५.३५) पुष्टि करती है कि भगवान् प्रत्येक परमाणु के भीतर भी स्थित हैं (*अण्डान्तरस्थ परमाणुचयान्तरस्थम्*)। वे मथुरा में, वैकुण्ठ में तथा हृदय में स्थित हैं। अत: हमें स्पष्ट समझ लेना होगा कि वे देवकी के हृदय या गर्भ में सामान्य बालक की तरह नहीं रहे थे। न ही वे सामान्य मानवी शिशु की तरह उत्पन्न हुए यद्यपि कंस जैसे असुरों को मोहित करने के लिए ऐसा करते हुए प्रतीत हुए। असुरगण व्यर्थ ही सोचते हैं कि कृष्ण ने सामान्य बालक की तरह जन्म लिया और सामान्य व्यक्ति की भाँति इस संसार से चले गए। भगवत्-ज्ञानी व्यक्ति ऐसी आसुरी धारणाओं का खंडन करते हैं। *अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानाम् ईश्वरोऽपि सन्* (*भगवद्गीता* ४.६)। भगवान् *अज* अर्थात् अजन्मा हैं और सबके परम नियन्ता हैं। फिर भी वे देवकी के पुत्र रूप में प्रकट हुए। इस श्लोक में पूर्ण-चन्द्रस्वरूप प्रकट होने वाले भगवान् की अचिन्त्य शक्ति का वर्णन हुआ है। भगवान् के आविर्भाव की विशिष्ट महत्ता को समझते हुए भगवान् को कभी भी सामान्य बालक की तरह जन्म लेते नहीं मानना चाहिए।

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
चतुर्भुजं शङ्खगदाद्युदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं
पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डल
त्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्
विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; अद्भुतम्—अद्भुत; बालकम्—बालक को; अम्बुज-ईक्षणम्—कमल जैसी आँखों वाले; चतु:-भुजम्—चार भुजाओं वाले; शङ्ख-गदा-आदि—चार हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा कमल लिए हुए; उदायुधम्—विभिन्न आयुध; श्रीवत्स-लक्ष्मम्—श्रीवत्स से अलंकृत, बालों का विशेष प्रकार श्रीवत्स कहलाता है और यह भगवान् के वक्षस्थल पर ही उगता है; गल-शोभि-कौस्तुभम्—उनके गले में वैकुण्ठ-लोक में प्राप्त होने वाला कौस्तुभ मणि था; पीत-अम्बरम्—पीला वस्त्र; सान्द्र-पयोद-सौभगम्—अत्यन्त सुन्दर तथा श्यामल रंग का; महा-अर्ह-वैदूर्य-किरीट-कुण्डल—उनका मुकुट तथा उनके कुण्डल

मूल्यवान वैदूर्य मणि से जड़े थे; त्विषा—सौन्दर्य द्वारा; परिष्वक्त-सहस्र-कुन्तलम्—बिखरे बड़े-बड़े बालों के द्वारा चमचमाता; उद्दाम-काञ्ची-अङ्गद-कङ्कण-आदिभिः—कमर में चमकीली पेटी, भुजाओं में बलय, कलाइयों में कंकण इत्यादि से युक्त.; विरोचमानम्—अत्यन्त सुन्दर ढंग से अलंकृत; वसुदेवः—कृष्ण के पिता वसुदेव ने; ऐक्षत—देखा।.

तब वसुदेव ने उस नवजात शिशु को देखा जिनकी अद्भुत आँखें कमल जैसी थीं और जो अपने चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म चार आयुध धारण किये थे। उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न था और उनके गले में चमकीला कौस्तुभ मणि था। वह पीताम्बर धारण किए थे, उनका शरीर श्याम घने बादल की तरह, उनके बिखरे बाल बड़े-बड़े तथा उनका मुकुट और कुण्डल असाधारण तौर पर चमकते वैदूर्यमणि के थे। वे करधनी, बाजूबंद, कंगन तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत होने के कारण अत्यन्त अद्भुत लग रहे थे।

तात्पर्य : *अद्भुतम्* शब्द के समर्थन में नवजात शिशु के अलंकरण तथा ऐश्वर्य का वर्णन हुआ है। *ब्रह्म-संहिता* (५.३०) में पुष्टि हुई है—*बर्हावतंसमसिताम्बुद सुन्दरांगम्*—भगवान् का सुन्दर स्वरूप श्याम रंग के घने बादलों जैसा (*असित*—श्याम तथा *अम्बुद्*—बादल) है। *चतुर्भुज* शब्द से स्पष्ट है कि कृष्ण पहले चार हाथों सहित भगवान् विष्णु के रूप में प्रकट हुए। मानव समाज में कोई भी सामान्य शिशु आज तक चार हाथों वाला उत्पन्न नहीं हुआ और क्या पूरी तरह बड़े बालों से युक्त कभी कोई शिशु उत्पन्न हुआ है? इसलिए भगवान् का अवतरण सामान्य शिशु के जन्म से सर्वथा भिन्न है। वैदूर्यमणि कभी नीला, कभी पीला तो कभी लाल दिखता है और वैकुण्ठलोक में उपलब्ध है। भगवान् का मुकुट तथा कुंडल इसी विशेष मणि से अलंकृत थे।

स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं
सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा ।
कृष्णावतारोत्सवसम्भ्रमोऽस्पृशन्
मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (वसुदेव, जो आनकदुन्दुभि कहलाते हैं); विस्मय-उत्फुल्ल-विलोचनः—भगवान् के सुन्दर स्वरूप को देखने से आश्चर्यचकित आँखें; हरिम्—भगवान् हरि को; सुतम्—पुत्र रूप में; विलोक्य—देखकर; आनकदुन्दुभिः—वसुदेव द्वारा; तदा—उस समय; कृष्ण-अवतार-उत्सव—कृष्ण के आविर्भाव पर उत्सव मनाने के लिए; सम्भ्रमः—सम्मान के साथ भगवान् का स्वागत करने की इच्छा; अस्पृशत्—बाँटने का अवसर प्राप्त किया; मुदा—अत्यधिक हर्ष के साथ; द्विजेभ्यः—ब्राह्मणों को; अयुतम्—दस हजार; आप्लुतः—विभोर; गवाम्—गाएँ।.

जब वसुदेव ने अपने विलक्षण पुत्र को देखा तो उनकी आँखें आश्चर्य से विस्फारित रह गईं। उन्होंने परम हर्ष में मन ही मन दस हजार गाएँ एकत्र कीं और उन्हें ब्राह्मणों में वितरित कर दिया

मानो कोई दिव्य उत्सव हो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने वसुदेव को अपने विलक्षण पुत्र को देखे जाने पर जो आश्चर्य हुआ उसका विश्लेषण किया है। वसुदेव नवजात शिशु को बहुमूल्य वस्त्रों तथा रत्नों से आभूषित देखकर आश्चर्य से काँप रहे थे। वे तुरन्त समझ गए कि यह कोई सामान्य बालक नहीं अपितु चतुर्भुजी भगवान् हैं, जो अपने आदि रूप में पूरी तरह अलंकृत होकर प्रकट हुए हैं। पहला आश्चर्य यह था कि कंस के उस बन्दीगृह में जन्म लेने से भगवान् डरे नहीं जिसमें वसुदेव तथा देवकी बन्द थे। दूसरा यह कि सर्वव्यापी परम ब्रह्म होते हुए भी वे देवकी की कोख से पैदा हुए। तीसरा आश्चर्य यह कि कोख से जन्म लेने वाला बालक इतनी अच्छी तरह अलंकृत था। चौथा यह कि भगवान् तो वसुदेव के आराध्यदेव थे फिर भी वे उनके पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। इन्हीं कारणों से वसुदेव अत्यधिक हर्षित थे अतएव वे क्षत्रियों की तरह पुत्र का जन्मोत्सव मनाना चाह रहे थे, किन्तु बन्दी होने के कारण प्रत्यक्ष रूप में ऐसा करपाने में असमर्थ थे इसीलिए उन्होंने यह उत्सव मन में ही मना लिया। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ा। यदि कोई भगवान् की सेवा बाह्यत: नहीं कर सकता है, तो वह मन में भी उनकी सेवा कर सकता है क्योंकि मन के कार्य अन्य इन्द्रियों के कार्यों के ही समान होते हैं। यह *अद्वय ज्ञान* कहलाता है। लोग सामान्यतया पुत्र-जन्म पर कर्मकाण्डीय उत्सव मनाते हैं। तो फिर वसुदेव ऐसा उत्सव क्यों नहीं मना सकते थे जबकि भगवान् ही उनके पुत्र रूप में प्रकट हुए हों?

अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं
परं नताङ्गः कृतधीः कृताञ्जलिः ।
स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं
विरोचयन्तं गतभीः प्रभाववित् ॥ १२॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; एनम्—बालक को; अस्तौत्—स्तुति अर्पित किया; अवधार्य—यह निश्चय करके कि बालक भगवान् था; पूरुषम्—परम पुरुष को; परम्—परम दिव्य; नत-अङ्गः—गिरकर; कृत-धीः—एकाग्र होकर; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़कर; स्व-रोचिषा—अपने शारीरिक सौन्दर्य के तेज से; भारत—हे महाराज परीक्षित; सूतिका-गृहम्—वह स्थान, जहाँ भगवान् का जन्म हुआ; विरोचयन्तम्—चारों ओर से प्रकाशित करते हुए; गत-भीः—भय से रहित होकर; प्रभाव-वित्—(भगवान् के) प्रभाव को जान सका।

हे भरतवंशी, महाराज परीक्षित, वसुदेव यह जान गए कि यह बालक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण है। इस निष्कर्ष पर पहुँचते ही वे निर्भय हो गए। हाथ जोड़े, मस्तक नवाये तथा

एकाग्रचित्त होकर वे उस बालक की स्तुति करने लगे जो अपने सहज प्रभाव के द्वारा अपने जन्म-स्थान को जगमग कर रहा था।

तात्पर्य : इतने महान् आश्चर्य से चकित वसुदेव ने अब अपना ध्यान भगवान् पर एकाग्र किया। वे भगवान् के प्रभाव को समझकर निर्भय हो गए क्योंकि वे जान गए कि मेरी रक्षा के लिए भगवान् प्रकट हुए हैं (*गतभीः प्रभाववित्*)। यह जानकर कि साक्षात् भगवान् उपस्थित हैं उन्होंने इस प्रकार यथोचित रूप में स्तुति की।

श्रीवसुदेव उवाच
विदितोऽसि भवान्साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ।
केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥ १३॥

शब्दार्थ

श्री-वसुदेवः उवाच—श्री वसुदेव ने प्रार्थना की; विदितः असि—अब मैं आपसे अवगत हूँ; भवान्—आप; साक्षात्—प्रत्यक्ष; पुरुषः—परम पुरुष; प्रकृतेः—प्रकृति से; परः—दिव्य, परे; केवल-अनुभव-आनन्द-स्वरूपः—आपका स्वरूप सच्चिदानन्द विग्रह है और जो भी आपका अनुभव करता है, वह आनन्द से पूरित हो जाता है; सर्व-बुद्धि-दृक्—परम प्रेक्षक, परमात्मा, प्रत्येक की बुद्धि।

वसुदेव ने कहा : हे भगवान्, आप इस भौतिक जगत से परे परम पुरुष हैं और आप परमात्मा हैं। आपके स्वरूप का अनुभव उस दिव्य ज्ञान द्वारा हो सकता है, जिससे आप भगवान् के रूप में समझे जा सकते हैं। अब आपकी स्थिति मेरी समझ में भलीभाँति आ गई है।

तात्पर्य : वसुदेव के हृदय के भीतर अपने पुत्र के प्रति स्नेह तथा भगवान् की दिव्य प्रकृति का ज्ञान दोनों जागृत हुए। प्रारम्भ में तो वासुदेव ने सोचा, ''ऐसे सुन्दर बालक ने जन्म लिया है, जिसे कंस आकर मार डालेगा।'' किन्तु जब उनकी समझ में यह बात आ गई कि यह सामान्य बालक नहीं अपितु साक्षात् भगवान् हैं, तो वे निर्भय हो गए। वे अपने पुत्र को हर तरह से अद्भुत एवं भगवान् समझकर भगवानोचित स्तुति करने लगे। कंस के उत्पीड़नों से निर्भीक होकर उन्होंने एक ही समय उस बालक को स्नेह का पात्र तथा स्तुति द्वारा पूजा का पात्र स्वीकार किया।

स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् ।
तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥ १४॥

शब्दार्थ

सः—वह (भगवान्); एव—निस्सन्देह; स्व-प्रकृत्या—अपनी ही शक्ति से (मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्); इदम्—यह भौतिक जगत; सृष्ट्वा—सृजन करके; अग्रे—प्रारम्भ में; त्रि-गुण-आत्मकम्—प्रकृति के तीन गुणों से बने (सत्त्वरजस्तमोगुण); तत् अनु—तत्पश्चात्; त्वम्—आप; हि—निस्सन्देह; अप्रविष्टः—प्रवेश न करने पर; प्रविष्टः इव—ऐसा प्रतीत होता है कि प्रवेश किया है; भाव्यसे—ऐसा समझा जाता है।

हे भगवन्, आप वही पुरुष हैं जिसने प्रारम्भ में अपनी बहिरंगा शक्ति से इस भौतिक जगत की सृष्टि की। तीन गुणों (सत्त्व, रजस् तथा तमस्) वाले इस जगत की सृष्टि के बाद ऐसा लगता है कि आपने उसके भीतर प्रवेश किया है यद्यपि यथार्थ तो यह है कि आपने प्रवेश नहीं किया।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (७.४) में भगवान् स्पष्ट बतलाते हैं—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

तीन गुणों सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण—वाला यह भौतिक जगत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, मन, बुद्धि तथा अहंकार से बना है और ये सभी कृष्ण से निकलने वाली शक्तियाँ हैं, किन्तु दिव्य होने के कारण कृष्ण सदैव इस भौतिक जगत से पृथक् हैं। जिन्हें शुद्धज्ञान नहीं है वे कृष्ण को पदार्थ की उपज मानते हैं और उनके शरीर को अपने जैसा भौतिक सोचते हैं (*अवजानन्ति मां मूढाः*)। फिर भी कृष्ण इस भौतिक जगत से सदैव विलग रहते हैं।

वैदिक वाङ्मय में सृष्टि का सम्बन्ध महाविष्णु से बतलाया जाता है। *ब्रह्म-संहिता* (५.३५) में कहा गया है—

एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्ड कोटिं

यच्छक्तिरस्ति जगदण्डचया यदन्तः।

अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

''मैं आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ। वे महाविष्णु के अंशरूप में भौतिक प्रकृति में प्रवेश करते हैं। फिर वे गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में प्रत्येक ब्रह्माण्ड में प्रवेश करते हैं और वे सारे तत्त्वों में, यहाँ तक कि प्रत्येक अणु के भीतर, क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में प्रवेश कर जाते हैं। सृष्टि की ऐसी अभिव्यक्तियाँ अनन्त हैं, जो ब्रह्माण्डों तथा व्यष्टि परमाणुओं में प्रकट होती हैं।'' गोविन्द का

अंशत: प्राकट्य *अन्तर्यामी* अर्थात् परमात्मा के रूप में होता है, जो इस भौतिक जगत में प्रवेश करते हैं (*अण्डान्तरस्थ*) और जो परमाणु के भी भीतर हैं। *ब्रह्म-संहिता* (५.४८) में आगे भी कहा गया है—

यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य

जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथा:।

विष्णुर्महान स इह यस्य कलाविशेषो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

इस श्लोक में महाविष्णु को कृष्ण का स्वांश बतलाया गया है। महाविष्णु कारणार्णव में शयन करते हैं और जब वे साँस छोड़ते हैं, तो लाखों ब्रह्माण्ड उनके शरीर के छिद्रों से बाहर निकल आते हैं। जब वे श्वास खींचते हैं, तो ये सारे ब्रह्माण्ड विलुप्त हो जाते हैं। इस तरह लाखों ब्रह्माण्डों के नियन्ता, ब्रह्मा और अन्य देवता, महाविष्णु के साँस लेते समय भौतिक संसार में भीतर-बाहर आते-जाते रहते हैं।

मूर्ख व्यक्ति सोचते हैं कि जब कृष्ण वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट होते हैं, तो वे सामान्य बालक की तरह सीमित शक्तिवाले होते हैं। किन्तु वसुदेव यह जानते थे कि भगवान् उनके पुत्र रूप में उत्पन्न हुए हैं, परन्तु वे न तो देवकी के गर्भ में प्रविष्ट हुए और न उससे बाहर आए। प्रत्युत भगवान् सदैव वहाँ विद्यमान थे। भगवान् भीतर और बाहर सर्वत्र उपस्थित रहते हैं, सर्वव्यापी हैं। *प्रविष्ट इव भाव्यसे* ऐसा लगता है कि वे देवकी के गर्भ में प्रविष्ट हुए और अब वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट हुए हैं। वसुदेव द्वारा इस ज्ञान की अभिव्यक्ति संकेत करती है कि वसुदेव को पता था कि ये घटनाएँ किस तरह घटीं। वसुदेव निश्चित ही भगवान् के परम भक्त थे और हमें ऐसे ही भक्त से शिक्षा लेनी चाहिए। इसीलिए *भगवद्गीता* की (४.३४) संस्तुति है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिन:॥

''जरा आध्यात्मिक गुरु के समीप जाकर सत्य सीखने का प्रयास तो करो। विनीत भाव से उनसे प्रश्न करो और उनकी सेवा करो। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति ही तुम्हें ज्ञान प्रदान कर सकता है क्योंकि उसने सत्य को देखा है।'' वसुदेव ने भगवान् को जन्म दिया फिर भी उन्हें इसका पूर्ण ज्ञान था कि भगवान्

किस तरह प्रकट तथा अप्रकट होते हैं। अतएव वे *तत्त्वदर्शी* थे क्योंकि उन्होंने स्वयं देखा था कि परम सत्य किस तरह उनके पुत्र रूप में प्रकट हुए थे। वसुदेव अज्ञानी न थे जिससे वे यह सोचते कि उनके पुत्र रूप में उत्पन्न होने से भगवान् सीमित हो गए हैं। भगवान् असीम हैं और भीतर-बाहर सर्वव्यापी हैं। अत: उनके प्रकट होने या अदृश्य होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतै: सह ।
नानावीर्या: पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि ॥ १५ ॥
सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेऽनुगता इव ।
प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह सम्भव: ॥ १६ ॥
एवं भवान्बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्
ग्राह्यैर्गुणै: सन्नपि तद्गुणाग्रह: ।
अनावृतत्वाद्बहिरन्तरं न ते
सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुन: ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; इमे—भौतिक शक्ति से बनी ये भौतिक सृष्टियाँ; अविकृता:—छिन्न-भिन्न नहीं; भावा:—ऐसी विचारधारा से; तथा—उसी प्रकार; ते—वे; विकृतै: सह—सम्पूर्ण भौतिकशक्ति से उत्पन्न इन विभिन्न तत्त्वों के साथ; नाना-वीर्या:—प्रत्येक तत्त्व विभिन्न शक्तियों से पूर्ण है; पृथक्—विलग; भूता:—होकर; विराजम्—सम्पूर्ण विश्व को; जनयन्ति—उत्पन्न करते हैं; हि—निस्सन्देह; सन्निपत्य—आध्यात्मिक शक्ति का साथ होने से; समुत्पाद्य—उत्पन्न किए जाने के बाद; दृश्यन्ते—प्रकट होते हैं; अनुगता:—उसके भीतर प्रविष्ट हुए; इव—मानो; प्राक्—शुरू से, इस जगत की सृष्टि के पूर्व से; एव—निस्सन्देह; विद्यमानत्वात्—भगवान् के अस्तित्व के कारण; न—नहीं; तेषाम्—इन भौतिक तत्त्वों का; इह—इस जगत में; सम्भव:—प्रवेश करना सम्भव हुआ होता; एवम्—इस प्रकार; भवान्—हे प्रभु; बुद्धि-अनुमेय-लक्षणै:—असली बुद्धि से तथा ऐसे लक्षणों से; ग्राह्यै:—इन्द्रिय विषयों से; गुणै:—गुणों से; सन् अपि—यद्यपि सम्पर्क में हैं; तत्-गुण-अग्रह:—उन गुणों के द्वारा स्पर्श नहीं किए जाते; अनावृतत्वात्—सर्वत्र उपस्थित होने से; बहि: अन्तरम्—बाहर-भीतर; न ते—ऐसी कोई बात नहीं है; सर्वस्य—हर वस्तु का; सर्व-आत्मन:—सभी वस्तुओं के मूल स्वरूप; आत्म-वस्तुन:—हर वस्तु आपकी है, किन्तु आप हर वस्तु के बाहर तथा भीतर हैं।

सम्पूर्ण भौतिक शक्ति (महत् तत्त्व) अविभाज्य है, किन्तु भौतिक गुणों के कारण यह पृथ्वी जल, अग्नि, वायु तथा आकाश में विलग होती सी प्रतीत होती है। ये विलग हुई शक्तियाँ जीवभूत के कारण मिलकर विराट जगत को दृश्य बनाती हैं, किन्तु तथ्य तो यह है कि विराट जगत की सृष्टि के पहले से ही महत् तत्त्व विद्यमान रहता है। अत: महत् तत्त्व का वास्तव में सृष्टि में प्रवेश नहीं होता है। इसी तरह यद्यपि आप अपनी उपस्थिति के कारण हमारी इन्द्रियों द्वारा अनुभवगम्य हैं, किन्तु आप न तो हमारी इन्द्रियों द्वारा अनुभवगम्य हो पाते हैं न ही हमारे मन या वचनों द्वारा अनुभव किए जाते हैं (*अवाङ्मनसागोचर*)। हम अपनी इन्द्रियों से कुछ ही वस्तुएँ देख पाते हैं, सारी वस्तुएँ नहीं। उदाहरणार्थ, हम अपनी आँखों का प्रयोग देखने के लिए कर

सकते हैं, आस्वाद के लिए नहीं। फलस्वरूप आप इन्द्रियों के परे हैं। यद्यपि आप प्रकृति के तीनों गुणों से संबद्ध हैं, आप उनसे अप्रभावित रहते हैं। आप हर वस्तु के मूल कारण हैं, सर्वव्यापी अविभाज्य परमात्मा हैं। अतएव आपके लिए कुछ भी बाहरी या भीतरी नहीं है। आपने कभी भी देवकी के गर्भ में प्रवेश नहीं किया प्रत्युत आप पहले से वहाँ उपस्थित थे।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.४) में स्वयं भगवान् ने यही बात बतलाई है—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥

''मेरे अव्यक्त रूप से यह सारा ब्रह्माण्ड परिव्याप्त है। सारे जीव मुझमें हैं, किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ।''

भगवान् की अनुभूति स्थूल इन्द्रियों के माध्यम से नहीं हो पाती। कहा गया है कि भगवान् कृष्ण के नाम, यश, लीलाएँ इत्यादि भौतिक इन्द्रियों द्वारा नहीं जाने जा सकते। जो समुचित निर्देशन के अन्तर्गत शुद्ध भक्ति में लगा हुआ है केवल वही उनका साक्षात्कार कर सकता है। *ब्रह्म-संहिता* (५.३८) में कहा गया है—

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन

सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।

जिसने भगवान् के प्रति दिव्य प्रेमभाव उत्पन्न कर लिया है, वह सदैव भगवान् गोविंद को अपने भीतर और बाहर देख सकता है। इस तरह वे सर्वसामान्य को दृष्टिगोचर नहीं होते। अतः *भगवद्गीता* के इस श्लोक में यह कहा गया है कि यद्यपि भगवान् सर्वव्यापी हैं, किन्तु भौतिक इन्द्रियों द्वारा वे विचारणीय नहीं हैं। यद्यपि हम उन्हें देख नहीं सकते, किन्तु वास्तव में सारी वस्तुएँ उन्हीं पर टिकी हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* के सातवें अध्याय में कहा गया है, यह सम्पूर्ण विराट जगत उनकी दो विभिन्न शक्तियों परा तथा अपरा अर्थात् आध्यात्मिक तथा भौतिक शक्तियों का मेल है। जिस तरह सूर्य का प्रकाश सारे ब्रह्माण्ड के ऊपर फैलता है उसी तरह भगवान् की शक्ति सृष्टि भर में फैली है और सारी वस्तुएँ उसी शक्ति पर टिकी हैं।

किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि वे सर्वव्यापी होने के कारण अपना निजी अस्तित्व खो चुके

हैं। ऐसे तर्कों का खण्डन करने के लिए भगवान् कहते हैं, ''मैं सर्वत्र हूँ और सारी वस्तुएँ मुझमें हैं, फिर भी मैं पृथक् हूँ।'' उदाहरणार्थ, राजा सरकार का मुखिया होता है और यह सरकार राजा की शक्ति की अभिव्यक्ति ही है। सरकार के विविध विभाग राजा की शक्तियाँ होते हैं और हर विभाग राजा की शक्ति पर आश्रित रहता है। इतने पर भी राजा से यह आशा करना कि वह हर विभाग में व्यक्तिगत रूप में उपस्थित हो सकेगा, व्यर्थ है। यह तो भोंडा उदाहरण हुआ। इसी तरह हम जो कुछ भी देखते हैं और जितनी भी वस्तुएँ विद्यमान हैं चाहे वे इस भौतिक जगत में हों या वैकुण्ठ लोक में, वे सब भगवान् की शक्ति पर आश्रित हैं। भगवान् की विभिन्न शक्तियों के विसरण से ही सृष्टि बनती है और जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है वे अपने साकार रूप में सर्वत्र उपस्थित हैं, जो उनकी विभिन्न शक्तियों का विसरण है।

यह तर्क दिया जा सकता है कि जो भगवान् केवल अपनी चितवन से सारे ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं, वे भला वसुदेव की पत्नी देवकी के गर्भ के भीतर कैसे आ सकते हैं। इस तर्क का खण्डन करने के लिए ही वसुदेव ने कहा, ''हे प्रभु! यह कोई बहुत बड़ा आश्चर्य नहीं है कि आप देवकी के गर्भ के भीतर प्रकट हुए हैं क्योंकि सृष्टि भी तो इसी तरह बनी थी। आप महाविष्णु के रूप में कारणार्णव में लेटे हुए थे और आपकी श्वास से असंख्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न हो गए। तब आप हर ब्रह्माण्ड के भीतर गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में प्रविष्ट हुए। इसके बाद आपने पुन: अपना विस्तार क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में किया और सारे जीवों के हृदयों में, यहाँ तक कि हर परमाणु के भी भीतर प्रविष्ट कर गए। अत: आपका देवकी के गर्भ में प्रवेश इसी तरह समझ में आ जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आपने प्रवेश किया है किन्तु इसके साथ साथ आप सर्वव्यापी भी बने रहते हैं। हम भौतिक उदाहरणों से आपके प्रवेश तथा अप्रवेश को समझ सकते हैं। कुल भौतिक शक्ति (महत् तत्त्व) सोलह तत्त्वों में विभाजित होकर भी जैसी की तैसी (अक्षत)बनी रहती है। यह भौतिक शरीर पाँच स्थूल तत्त्वों— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश का मेल ही तो है। जब भी कोई भौतिक शरीर उपस्थित होता है, तो लगता है कि उन तत्त्वों का नए सिरे से सृजन हुआ है, किन्तु ये सारे तत्त्व शरीर के बाहर सदैव विद्यमान रहते हैं। इसी तरह यद्यपि आप देवकी के गर्भ में शिशु रूप में प्रकट हो रहे हैं, आप बाहर भी विद्यमान हैं। आप सदैव अपने धाम में रहते हैं, किन्तु आप एक ही समय लाखों रूपों में अपना

विस्तार कर सकते हैं।

''आपके प्राकट्य को काफी बुद्धि लगाकर समझना पड़ता है क्योंकि आपसे भौतिक शक्ति भी उद्‌भूत होती रहती है। आप भौतिक शक्ति के उसी प्रकार से मूल स्रोत हैं जिस तरह सूर्य-प्रकाश का स्रोत सूर्य है। न तो सूर्य-प्रकाश सूर्यमण्डल को आच्छादित कर सकता है, न ही आपसे उद्‌भूत भौतिक शक्ति आपको आच्छादित कर सकती है। आप भौतिक शक्ति के तीन गुणों में प्रतीत होते हैं, किन्तु ये तीनों गुण आपको आच्छादित नहीं कर सकते। अत्यन्त बुद्धिजीवी दार्शनिक इसे समझते हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि आप भौतिक शक्ति के भीतर प्रतीत होते हैं, किन्तु आप इसके द्वारा कभी आच्छादित नहीं होते।''

वेदों का कथन है कि परब्रह्म का अपना तेज प्रकट होता रहता है, जिससे हर वस्तु प्रकाशित होती है। *ब्रह्म-संहिता* से हमें पता चलता है कि *ब्रह्मज्योति* या ब्रह्मतेज भगवान् के शरीर से उद्‌भूत होता है। इसी ब्रह्मतेज से सारी सृष्टि उत्पन्न होती है। *भगवद्‌गीता* में यह भी कहा गया है कि भगवान् ब्रह्मतेज के आश्रय हैं। मूलत: वे ही सारी वस्तुओं के मूल कारण हैं। किन्तु अल्पज्ञ यह सोचते हैं कि जब भगवान् इस भौतिक जगत में आते हैं, तो वे भौतिक गुणों को स्वीकार करते हैं। ऐसा निष्कर्ष परिपक्व नहीं अपितु यह अल्पज्ञ का निष्कर्ष होता है।

य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति
व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुध: ।
विनानुवादं न च तन्मनीषितं
सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

य:—जो भी; आत्मन:—आत्मा का; दृश्य-गुणेषु—शरीर इत्यादि दृश्य पदार्थों में से; सन्—उस अवस्था को प्राप्त; इति—इस प्रकार; व्यवस्यते—कर्म करता रहता है; स्व-व्यतिरेकत:—मानो शरीर आत्मा से स्वतंत्र है; अबुध:—धूर्त, मूढ़; विना अनुवादम्—समुचित अध्ययन के बिना; न—नहीं; च—भी; तत्—शरीर तथा अन्य दृश्य वस्तुएँ; मनीषितम्—विवेचना किया हुआ; सम्यक्—पूरी तरह; यत:—मूर्ख होने के कारण; त्यक्तम्—तिरस्कृत कर दिए जाते हैं; उपाददत्—इस शरीर को वास्तविकता मान बैठता है; पुमान्—मनुष्य।

जो व्यक्ति प्रकृति के तीन गुणों से बने अपने दृश्य शरीर को आत्मा से स्वतंत्र मानता है, वह अस्तित्व के आधार से ही अनजान होता है और इसलिए वह मूढ़ है। जो विद्वान हैं, वे इस निर्णय को नहीं मानते क्योंकि विवेचना द्वारा यह समझा जा सकता है कि आत्मा से निराश्रित दृश्य

शरीर तथा इन्द्रियाँ सारहीन हैं। यद्यपि इस निर्णय को अस्वीकार कर दिया गया है, किन्तु मूर्ख व्यक्ति इसे सत्य मानता है।

तात्पर्य : आत्मा के मूलाधार के बिना शरीर उत्पन्न नहीं हो सकता। यद्यपि तथाकथित विज्ञानियों ने अपनी-अपनी रासायनिक प्रयोगशालाओं में सजीव प्राणी को उत्पन्न करने के नानाविध प्रयास किए हैं, किन्तु वे ऐसा कर नहीं पाए क्योंकि जब तक आत्मा विद्यमान नहीं होता तब तक भौतिक तत्त्वों से शरीर निर्मित नहीं किया जा सकता। चूँकि विज्ञानी शरीर की रासायनिक रचना के विषय में जो सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं उनके प्रति अब मुग्ध हैं, अत: हमने अनेक विज्ञानियों को ललकारा है कि वे एक छोटा सा अंडा तो बनाकर दिखला दें। अंडे के रासायनिक पदार्थ सरलता से उपलब्ध किए जा सकते हैं। उसमें एक सफेद अंश होता है और एक पीला अंश। ये एक आवरण से ढके रहते हैं और आधुनिक विज्ञानी सरलता से इसकी नकल कर सकते हैं। माना कि वे ऐसा अंडा बना भी लें, किन्तु जब उसे वे इनकुबेटर के भीतर रखते हैं, तो इस मनुष्यनिर्मित रासायनिक अंडे से मुर्गी के चूजे नहीं निकलते। इसमें आत्मा का योग होना ही चाहिए क्योंकि जीव केवल रासायनिक संयोग नहीं है। अत: जो लोग सोचते हैं कि आत्मा के बिना जीवन का अस्तित्व हो सकता है उन्हें *अबुध:* या मूर्ख कहा गया है।

पुन: कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो शरीर को अपर्याप्त समझकर शरीर का तिरस्कार करते हैं। वे भी मूर्खों की ही श्रेणी में आते हैं। इस शरीर का न तो तिरस्कार किया जा सकता है न ही इसे पर्याप्त कहकर स्वीकार किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान् तथा शरीर एवं आत्मा, भगवान् की ही शक्तियाँ हैं जिनका वर्णन स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (७.४-५) में किया है—

भूमिरापोऽनलोवायु: खं मनो बुद्धिरेव च।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

''पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार ये मेरी आठ विभिन्न भौतिक शक्तियाँ हैं। किन्तु हे महाबाहु अर्जुन! इस अपरा शक्ति के अतिरिक्त भी मेरी एक पराशक्ति है, जो उन

समस्त जीवों से युक्त है, जो भौतिक प्रकृति से संघर्ष कर रहे हैं और ब्रह्माण्ड को बनाये रखे हुए हैं।''

अतएव शरीर का भगवान् से वैसा ही सम्बन्ध होता है जैसा आत्मा का होता है। चूँकि दोनों ही भगवान् की शक्तियाँ हैं अतएव इनमें से कोई भी मिथ्या नहीं है क्योंकि उनका आगम वास्तव में हुआ होता है। जो जीवन के इस रहस्य को नहीं जानता वह *अबुध:* कहा जाता है। वैदिक आदेशों के अनुसार—*ऐतदात्म्यम् इदं सर्वम्, सर्वं खल्विदं ब्रह्म*—सारी वस्तुएँ परब्रह्म हैं। अतएव शरीर तथा आत्मा दोनों ही ब्रह्म हैं क्योंकि पदार्थ तथा आत्मा ब्रह्म से उद्भूत हैं।

वेदों के निर्णयों से ज्ञात न होने के कारण कुछ लोग भौतिक प्रकृति को पदार्थ के रूप में स्वीकार करते हैं और कुछ लोग आत्मा को पदार्थ मानते हैं, किन्तु वास्तव में ब्रह्म ही पदार्थ है। ब्रह्म समस्त कारणों का कारण है। इस जगत के अवयव तथा कारण ब्रह्म है और इस जगत के अवयवों को हम ब्रह्म से स्वतंत्र नहीं रख सकते। साथ ही, चूँकि इस भौतिक जगत के अवयव तथा इसका कारण ब्रह्म ही है अतएव ये दोनों ही *सत्य* हैं अत: *ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या* वक्तव्य की कोई वैधता नहीं है। यह जगत मिथ्या नहीं है।

ज्ञानी लोग इस जगत का निषेध करते हैं और मूर्ख लोग इसे ही सत्य मानते हैं। इस तरह दोनों ही दिग्भ्रमित रहते हैं। यद्यपि आत्मा की तुलना में शरीर महत्त्वपूर्ण नहीं है, किन्तु हम यह तो नहीं कह सकते कि वह मिथ्या है। फिर भी शरीर नश्वर है और जो मूर्ख भौतिकतावादी व्यक्ति हैं, जिन्हें आत्मा का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं है, नश्वर शरीर को सत्य मानकर उसको सजाने-सँवारने में लगे रहते हैं। शरीर को मिथ्या मानकर उसका निषेध तथा शरीर को सर्वस्व मानना इन दोनों दोषों से—बचा जा सकता है यदि कृष्णभावनामृत पद को प्राप्त कर लिया जाए। यदि हम इस जगत को मिथ्या मानते हैं, तो *असुरों* की कोटि में आ जाते हैं, जो यह कहते हैं कि यह जगत मिथ्या है, इसका कोई आधार नहीं है और ईश्वर इसका नियंत्रक नहीं है (*असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्*)। *भगवद्गीता* के सोलहवें अध्याय में इसे असुरों का निर्णय कहा गया है।

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो
वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् ।
त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते

त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

त्वत्तः—आपसे; अस्य—सम्पूर्ण जगत की; जन्म—सृष्टि; स्थिति—पालन; संयमान्—तथा संहार; विभो—हे प्रभु; वदन्ति—विद्वान वैदिक पंडित कहते हैं; अनीहात्—प्रयत्न से मुक्त; अगुणात्—प्रकृति के गुणों से अप्रभावित; अविक्रियात्—आपकी दिव्य स्थिति में स्थिर रहने वाले; त्वयि—आप में; ईश्वरे—भगवान् में; ब्रह्मणि—परब्रह्म में; नो—नहीं; विरुध्यते—विरोध होता है; त्वत्-आश्रयत्वात्—आपके द्वारा नियंत्रित होने से; उपचर्यते—अपने आप चलती हैं; गुणैः—गुणों के कार्यशील होने से।

हे प्रभु, विद्वान वैदिक पंडित कहते हैं कि सम्पूर्ण विश्व का सृजन, पालन एवं संहार आपके द्वारा होता है तथा आप प्रयास से मुक्त, प्रकृति के गुणों से अप्रभावित तथा अपनी दिव्य स्थिति में अपरिवर्तित रहते हैं। आप परब्रह्म हैं और आप में कोई विरोध नहीं है। प्रकृति के तीनों गुण—सतो, रजो तथा तमोगुण आपके नियंत्रण में हैं अतः सारी घटनाएँ स्वतः घटित होती हैं।

तात्पर्य : वेदों में कहा गया है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते

न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

''भगवान् को न तो कुछ करना होता है और न कोई उनके तुल्य है, न उनसे बढ़कर ही है क्योंकि सारी घटनाएँ उनकी अनेक शक्तियों द्वारा स्वतः सुचारु रूप से घटती रहती हैं।'' (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.८) सृजन, पालन तथा संहार इन तीनों का संचालन भगवान् स्वयं करते हैं और इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में की गई है (*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*)। अन्ततोगत्वा भगवान् को कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं पड़ती इसीलिए वे *निर्विकार* अर्थात् अपरिवर्तनीय कहलाते हैं। चूँकि हर घटना उनके निर्देशानुसार होती है, अतः वे *सृष्टिकर्ता* कहलाते हैं। इसी तरह वे संहार के स्वामी हैं। जब स्वामी एक स्थान पर आसीन रहता है और उनके नौकर विभिन्न कार्य करते रहते हैं, तो वे जो भी काम करते हैं वह अन्ततः स्वामी का कार्य होता है यद्यपि वह कुछ भी नहीं करता (*न तस्य कार्यं करणं च विद्यते*)। भगवान् की शक्तियाँ असंख्य हैं अतः सारी घटनाएँ सुचारु रूप से घटती रहती हैं। भगवान् स्थिर हैं और इस भौतिक जगत में किसी भी वस्तु के प्रत्यक्ष कर्ता नहीं हैं।

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया

बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ।
सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं
कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सः त्वम्—आप, जो वही व्यक्ति अर्थात् ब्रह्म हैं; त्रि-लोक-स्थितये—तीनों लोकों उच्च, मध्य तथा अधः लोकों का पालन करने के लिए; स्व-मायया—अपनी निजी शक्ति से (आत्ममायया); बिभर्षि—धारण करते हैं; शुक्लम्—सतोगुणी विष्णु के श्वेत रूप में; खलु—भी; वर्णम्—रंग; आत्मनः—आपकी ही कोटि का (विष्णुतत्त्व); सर्गाय—सम्पूर्ण जगत की सृष्टि के लिए; रक्तम्—रजोगुण के रंग का लाल; रजसा—रजोगुण से युक्त; उपबृंहितम्—आविष्ट; कृष्णम् च—तथा अंधकार का गुण; वर्णम्—रंग; तमसा—अज्ञान से आवृत; जन-अत्यये—सम्पूर्ण सृष्टि के विनाश हेतु।

हे भगवन्, आपका स्वरूप तीनों भौतिक गुणों से परे है फिर भी तीनों लोकों के पालन हेतु आप सतोगुणी विष्णु का श्वेत रंग धारण करते हैं, सृजन के समय जो रजोगुण से आवृत होता है आप लाल प्रतीत होते हैं और अन्त में अज्ञान से आवृत संहार के समय आप श्याम प्रतीत होते हैं।

तात्पर्य : वसुदेव ने भगवान् से प्रार्थना की, "आप *शुक्लम्* कहलाते हैं। *शुक्लम्* अथवा श्वेत परम सत्य का प्रतीक है क्योंकि यह भौतिक गुणों से अप्रभावित रहता है। ब्रह्माजी *रक्त* कहलाते हैं क्योंकि वे सृष्टि के रजोगुण के द्योतक हैं। तमोगुण (अंधकार) शिवजी के अधिकार में है क्योंकि वे विश्व का संहार करते हैं। इस जगत की सृष्टि, संहार और पालन आपकी शक्तियों द्वारा संचालित हैं, किन्तु आप इन गुणों से सदा अप्रभावित रहते हैं।" जैसी कि वेदों में पुष्टि हुई है—*हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्*—भगवान् सारे भौतिक गुणों से मुक्त होते हैं। यह भी कहा जाता है कि भगवान् के शरीर में रजो तथा तमोगुण नहीं पाए जाते हैं।

हमें अपनी इन्द्रियों के अनुभव के अनुसार में इस श्लोक में उल्लिखित तीन रंगों *शुक्ल, रक्त* तथा *कृष्ण* का शाब्दिक अर्थ नहीं ग्रहण करना चाहिए अपितु ये *सत्त्वगुण, रजोगुण* तथा *तमोगुण* का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। कभी-कभी हमें तमोगुणी बगुला श्वेत दिखता है। *बकान्ध न्याय* के अनुसार मूर्ख बगुला बैलों के अंडकोषों को लटकती मछलियाँ समझकर उसके पीछे दौड़ता है ताकि जैसे ही वे गिरें, उसी समय वह उन्हें पकड़ ले। इस तरह बगुला सदैव अंधकार में रहता है। यद्यपि वैदिक साहित्य के प्रणेता व्यासदेव श्याम रंग के थे, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे तमोगुणी थे। वे तो प्रकृति के भौतिक गुणों के परे सत्त्वगुण के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित थे। कभी-कभी ये रंग (*शुक्लरक्तस्तथापीतः*) ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों को बतलाने वाले होते हैं। क्षीरोदकशायी भगवान् विष्णु श्याम रंग के हैं, शिवजी श्वेत और ब्रह्मा लाल रंग के, किन्तु श्रील सनातन गोस्वामी ने *वैष्णव तोषणी टीका* में

लिखा है कि इन रंगों का प्रदर्शन इस तरह की अभिव्यक्ति के लिए नहीं होता।

शुक्ल, रक्त तथा कृष्ण का सही ज्ञान इस प्रकार होता है। भगवान् सदैव दिव्य हैं, किन्तु सृष्टि करने के लिए वे ब्रह्मा का रक्त रंग धारण करते हैं। पुन: कभी-कभी भगवान् क्रुद्ध होते हैं। *भगवद्गीता* (१६.१९) में भगवान् कहते हैं—

तानहं द्विषत: क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।

क्षिपाम्यजस्रमशुभान् आसुरीष्वेव योनिषु॥

''जो लोग ईर्ष्यालु तथा क्रूर हैं और नराधम हैं उन्हें मैं भवसागर में विविध असुर योनियों में डाल देता हूँ।'' इन असुरों का विनाश करने के लिए भगवान् क्रुद्ध होते हैं और तब वे शिवजी का रूप ग्रहण करते हैं। संक्षेप में, भगवान् तीनों गुणों से परे हैं। हमें इन्द्रिय अनुभूति के कारण अन्यथा सोचकर दिग्भ्रमित नहीं होना चाहिए। हमें महाजनों के माध्यम से भगवान् की स्थिति को समझना चाहिए। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (१.३.२८) में कहा गया है—*एते चांश कला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।*

त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषु-
गृंहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर ।
राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपै-
र्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमू: ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; अस्य—इस जगत के; लोकस्य—विशेषतया इस मर्त्यलोक के; विभो—हे परमेश्वर; रिरक्षिषु:—(असुरों के उत्पात से) सुरक्षा के इच्छुक; गृहे—इस घर में; अवतीर्ण: असि—अब प्रकट हुए हो; मम—मेरे; अखिल-ईश्वर—यद्यपि आप सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी हैं; राजन्य-संज्ञ-असुर-कोटि-यूथ-पै:—राजनीतिज्ञों तथा राजाओं के रूप में लाखों असुरों तथा उनके अनुयायियों समेत; निर्व्यूह्यमाना:—सारे संसार में विचरण कर रहे; निहनिष्यसे—मारेगा; चमू:—सेना, साज-सामान, सैनिक।

हे परमेश्वर, हे समस्त सृष्टि के स्वामी, आप इस जगत की रक्षा करने की इच्छा से मेरे घर में प्रकट हुए हैं। मुझे विश्वास है कि आप क्षत्रियों का बाना धारण करने वाले राजनीतिज्ञों के नायकत्व में जो असुरों की सेनाएँ संसार भर में विचरण कर रही हैं उनका वध करेंगे। निर्दोष जनता की सुरक्षा के लिए आपके द्वारा इनका वध होना ही चाहिए।

तात्पर्य : कृष्ण इस जगत में दो कारणों से प्रकट होते हैं—*परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्*—निर्दोष धार्मिक भक्तों की रक्षा करने तथा उन अशिक्षित असभ्य असुरों का वध करने के लिए जो राजनीतिक सत्ता के लिए कुत्तों की तरह भौंकते हैं और परस्पर झगड़ते रहते हैं। कहा गया

है—*कलिकाले नामरूपे कृष्ण अवतार।* हरे कृष्ण आन्दोलन भी नाम रूप में कृष्ण का अवतार ही है। हममें से हर व्यक्ति को जो आसुरी शासकों तथा राजनीतिज्ञों से भयभीत है कृष्ण के इस अवतार हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/हरे राम, हरे राम, रामराम, हरे हरे का स्वागत करना चाहिए। तभी हम इन आसुरी शासकों के उत्पीड़न से सुरक्षित रह सकेंगे। सम्प्रति ये शासक इतने शक्तिशाली हैं कि येनकेनप्रकारेण सरकार के उच्च पदों को अपने कब्जे में करके असंख्य लोगों को राष्ट्रीय सुरक्षा या किसी आपात्काल के बहाने सताया करते हैं। तब फिर से एक असुर दूसरे असुर को पछाड़ता है, किन्तु इसमें जनता उसी तरह सतायी जाती है। अत: सारा विश्व एक संकटपूर्ण स्थिति में है और एकमात्र आशा बँधी हुई है इस हरे कृष्ण आन्दोलन पर। भगवान् नृसिंहदेव का अवतार तब हुआ जब प्रह्लाद अपने आसुरी पिता द्वारा अत्यधिक सताये जा चुके थे। ऐसे ही आसुरी पिताओं—शासक राजनीतिज्ञों—के कारण ही हरे कृष्ण आन्दोलन को आगे बढ़ा पाना कठिन हो रहा है। किन्तु अब जब कि कृष्ण अपने नाम के रूप में इस आन्दोलन के माध्यम से प्रकट हो चुके हैं, तो हमें आशा करनी चाहिए कि इन आसुरी पिताओं का विनाश होकर रहेगा और सारे विश्व में ईश्वर का साम्राज्य स्थापित होगा। आज सारा विश्व राजनीतिज्ञों, गुरुओं, साधुओं, योगियों तथा अवतारों के भेष में असंख्य असुरों से भरा हुआ है और वे मानव समाज को सही लाभ देने वाले कृष्णभावनामृत के बारे में जनता को भ्रमित कर रहे हैं।

अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे
श्रुत्वाग्रजांस्ते न्यवधीत्सुरेश्वर ।
स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं
श्रुत्वाधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥ २२॥

शब्दार्थ

अयम्—इस (धूर्त) ने; तु—लेकिन; असभ्य:—तनिक भी सभ्य नहीं (असुर का अर्थ ही होता है असभ्य और सुर का सभ्य); तव—आपका; जन्म—जन्म; नौ—हमारे; गृहे—घर में; श्रुत्वा—सुनकर; अग्रजान् ते—आपसे पहले उत्पन्न हुए भाइयों को; न्यवधीत्—मार डाला; सुर-ईश्वर—हे सभ्य पुरुषों अर्थात् देवताओं के ईश्वर; स:—वह (असभ्य कंस); ते—तुम्हारे, आपके; अवतारम्—प्राकट्य को; पुरुषै:—अपने सेनापतियों द्वारा; समर्पितम्—सूचना दिया हुआ; श्रुत्वा—सुनकर; अधुना—अब; एव—निस्सन्देह; अभिसरति—तुरन्त आएगा; उदायुध:—हथियार उठाए हुए।

हे परमेश्वर, हे देवताओं के स्वामी, यह भविष्यवाणी सुनकर कि आप हमारे घर में जन्म लेंगे और उसका वध करेंगे, इस असभ्य कंस ने आपके कई अग्रजों को मार डाला है। वह ज्योंही

अपने सेनानायकों से सुनेगा कि आप प्रकट हुए हैं, वह आपको मारने के लिए हथियार समेत तुरन्त ही आ धमकेगा।

तात्पर्य : यहाँ पर कंस को *असभ्य* कहा गया है, जिसका अर्थ है जंगली ''महाक्रूर'' क्योंकि वह अपनी बहन की कई सन्तानों को मार चुका था। जब उसने यह भविष्यवाणी सुनी कि उसका वध देवकी के आठवें पुत्र द्वारा होगा तो वह असभ्य पुरुष कंस तुरन्त ही अपनी नवविवाहिता बहन को मार डालने के लिए उद्यत हो गया। असभ्य व्यक्ति अपनी इन्द्रियों की तुष्टि के लिए कुछ भी कर सकता है। वह शिशुओं का, गायों का, ब्राह्मणों का और वृद्धों तक का वध कर सकता है। उसे किसी पर दया नहीं आती। वैदिक सभ्यता के अनुसार यदि गाएँ, स्त्रियाँ, बच्चे, बृद्ध तथा ब्राह्मण दोषी भी हों तो उन्हें क्षमा कर दिया जाना चाहिए। किन्तु असुरगण—असभ्यजन—इसकी परवाह नहीं करते। सम्प्रति गायों का तथा बच्चों का वध बिना रोकटोक के चल रहा है, अत: यह सभ्यता रंचभर भी मानवीय नहीं है और जो लोग इस निंदनीय सभ्यता का संचालन कर रहे हैं, वे असभ्य असुर हैं।

ऐसे असभ्य असुर कृष्णभावनामृत आन्दोलन के पक्ष में नहीं हैं। जन अधिकारी के रूप में वे बेहिचक घोषणा करते हैं कि हरे कृष्ण आन्दोलन का कीर्तन एक ऊधम है, यद्यपि *भगवद्गीता* में स्पष्ट कहा गया है—*सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रता:।* इस श्लोक के अनुसार महात्माओं का कर्तव्य है कि वे हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करें और यथाशक्ति सारे विश्व में इसका प्रसार करने का प्रयत्न करें। दुर्भाग्यवश समाज ऐसी असभ्य अवस्था में है कि इसमें ऐसे तथाकथित महात्मा भरे पड़े हैं, जो गायों तथा बच्चों को मारने के लिए तथा हरे कृष्ण आन्दोलन को रोकने के लिए तैयार रहते हैं। ऐसी असभ्य कार्यवाहियाँ हरे कृष्ण आन्दोलन के मुम्बई केन्द्र, हरे कृष्ण धाम के विरोध में वास्तव में प्रदर्शित की गईं। जिस तरह कंस से यह आशा नहीं की जाती थी कि वह देवकी तथा वसुदेव के सुन्दर बालक का वध करे, उसी तरह असभ्य समाज से, भले ही वह कृष्णभावनामृत आंदोलन की प्रगति से अप्रसन्न है, यह आशा नहीं की जाती कि वह इस आन्दोलन को रोके। तो भी हमें अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना होगा। यद्यपि कृष्ण का वध नहीं किया जा सकता, किन्तु कृष्ण का पिता होने के कारण वसुदेव काँप रहे थे क्योंकि स्नेहवश उन्होंने सोचा कि तुरन्त ही कंस आएगा और उनके पुत्र को मार डालेगा। इसी तरह यद्यपि कृष्णभावनामृत आन्दोलन तथा कृष्ण विलग नहीं और उन्हें असुरगण रोक

नहीं सकते, किन्तु हम भयभीत हैं कि ये असुर किसी भी समय विश्व के किसी भी भाग में इस आन्दोलन को रोक सकते हैं।

श्रीशुक उवाच
अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम् ।
देवकी तमुपाधावत्कंसाद्भीता सुविस्मिता ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—वसुदेव द्वारा प्रार्थना करने के बाद; एनम्—इस कृष्ण को; आत्मजम्—अपने पुत्र; वीक्ष्य—देखकर; महा-पुरुष-लक्षणम्—भगवान् विष्णु के समस्त लक्षणों से युक्त; देवकी—कृष्ण की माता; तम्—उन (कृष्ण) की; उपाधावत्—प्रार्थना की; कंसात्—कंस से; भीता—भयभीत; सु-विस्मिता—ऐसा अद्भुत बालक देखकर आश्चर्यचकित।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : तत्पश्चात् यह देखकर कि उनके पुत्र में भगवान् के सारे लक्षण हैं, कंस से अत्यधिक भयभीत तथा असामान्य रूप से विस्मित देवकी भगवान् से प्रार्थना करने लगीं।

तात्पर्य : इस श्लोक का *सुविस्मिता* शब्द महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है, ''चकित।'' देवकी तथा उनके पति वसुदेव को आश्वासन दिया गया था कि उनका पुत्र भगवान् है अतएव कंस द्वारा अवध्य है, किन्तु स्नेह के वशीभूत होकर तथा कंस की पूर्व नृशंसता को सोचकर वे भयभीत हो रहे थे कि कृष्ण का कहीं वध न हो जाए। इसीलिए *सुविस्मिता* शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार हम भी यह सोचकर हैरान हो जाते हैं कि यह आन्दोलन असुरों द्वारा कुचल डाला जाएगा या निर्भय होकर आगे बढ़ता जाएगा।

श्रीदेवक्युवाच
रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं
ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं
स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

श्री-देवकी उवाच—श्री देवकी ने कहा; रूपम्—स्वरूप; यत् तत्—क्योंकि आप वही रूप हैं; प्राहुः—कहलाते हैं; अव्यक्तम्—अव्यक्त, भौतिक इन्द्रियों द्वारा अनुभूत न होने वाले (अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियै); आद्यम्—आदि कारण; ब्रह्म—ब्रह्म; ज्योतिः—प्रकाश; निर्गुणम्—भौतिक गुणों से रहित; निर्विकारम्—बिना परिवर्तन के विष्णु का शाश्वत स्वरूप; सत्ता-मात्रम्—आदि तत्त्व, सबका कारण; निर्विशेषम्—परमात्मा के रूप में सर्वत्र विद्यमान; निरीहम्—इच्छारहित; सः—वह परम पुरुष; त्वम्—आपको; साक्षात्—प्रत्यक्ष; विष्णुः—भगवान् विष्णु; अध्यात्म-दीपः—समस्त दिव्य ज्ञान के लिए दीपक (आपको जान लेने पर सब कुछ जाना जा सकता है.

श्रीदेवकी ने कहा : हे भगवन, वेद अनेक हैं। उसमें से कुछ आपको शब्दों तथा मन द्वारा अव्यक्त बतलाते हैं फिर भी आप सम्पूर्ण विश्व के उद्‌गम हैं। आप ब्रह्म हैं, सभी वस्तुओं से बड़े और सूर्य के समान तेज से युक्त। आपका कोई भौतिक कारण नहीं, आप परिवर्तन तथा विचलन से मुक्त हैं और आपकी कोई भौतिक इच्छाएँ नहीं हैं। इस तरह वेदों का कथन है कि आप ही सार हैं। अतः हे प्रभु, आप समस्त वैदिक कथनों के उद्‌गम हैं और आपको समझ लेने पर मनुष्य हर वस्तु धीरे धीरे समझ जाता है। आप ब्रह्मज्योति तथा परमात्मा से भिन्न हैं फिर भी आप उनसे भिन्न नहीं हैं। आपसे ही सब वस्तुएँ उद्‌भूत हैं। दरअसल आप ही समस्त कारणों के कारण हैं, आप समस्त दिव्य ज्ञान की ज्योति भगवान् विष्णु हैं।

तात्पर्य : हर वस्तु के उद्‌गम विष्णु हैं और भगवान् विष्णु तथा भगवान् कृष्ण में कोई अन्तर नहीं क्योंकि दोनों ही *विष्णु-तत्त्व* हैं। ऋग्वेद से पता चलता है—*ॐ तद् विष्णोः परमं पदम्*—मूल तत्त्व तो सर्वव्यापी भगवान् विष्णु हैं, जो परमात्मा तथा तेजोमय ब्रह्म हैं। सारे जीव भी उन विष्णु के अंश हैं जिनकी शक्तियाँ विविध हैं (*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बलक्रिया च*)। इसलिए विष्णु या कृष्ण सर्वस्व हैं। *भगवद्‌गीता* (१०.८) में भगवान् कृष्ण कहते हैं—*अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते*—मैं सारे आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतों का उद्‌गम हूँ। सारी वस्तुएँ मुझी से उद्‌भूत हैं। अतएव कृष्ण हर वस्तु के आदि कारण हैं (*सर्वकारणकारणम्*)। जब विष्णु अपने विश्वव्यापी रूप में विस्तार करते हैं, तो हमें समझना चाहिए कि वे *निराकार निर्विशेष ब्रह्मज्योति* रूप में हैं।

यद्यपि सारी वस्तुएँ कृष्ण से उद्‌भूत होती हैं, किन्तु अन्ततोगत्वा वे एक पुरुष हैं। *अहं आदिर्हि देवानाम्* वे ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर के उद्‌गम हैं और उन सबसे अनेक अन्य देवता प्रकट होते हैं। इसीलिए कृष्ण ने *भगवद्‌गीता* (१४.२७) में कहा है—*ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्*—ब्रह्म मुझ पर आश्रित है। भगवान् यह भी कहते हैं (*भगवद्‌गीता* ९.२३)—

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

''हे कुन्तीपुत्र! अन्य देवताओं को मनुष्य चाहे जो कुछ भी अर्पित क्यों न करे, किन्तु वास्तव में वह एकमात्र मेरे निमित्त होता है परन्तु वह असली समझ के बिना सम्पन्न किया जाता है।'' ऐसे अनेक

लोग हैं, जो भिन्न-भिन्न देवताओं की पूजा, उन्हें पृथक् देवता मानकर करते हैं, किन्तु वास्तव में वे पृथक् होते नहीं। यथार्थ तो यह है कि हर देवता तथा हर जीव कृष्ण का अंश है (*ममैवांशो जीवलोके जीवभूत:*)। देवता भी जीव की कोटि में आते हैं, वे पृथक् देवता नहीं होते। किन्तु अपरिपक्व बुद्धि वाले तथा भौतिक प्रकृति के गुणों से कलुषित व्यक्ति अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार विविध देवताओं की पूजा करते हैं। इसीलिए *भगवद्गीता* में इनकी भर्त्सना की गई है (*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना: प्रपद्यन्तेऽन्यदेवता:*)। चूँकि लोग बुद्धिविहीन तथा बहुत कम प्रगत होते हैं और उन्हें सत्य का समुचित ज्ञान नहीं रहता इसलिए वे या तो विविध देवताओं की पूजा करते हैं या विभिन्न दर्शनों के अनुसार यथा मायावादी दर्शन के अनुसार चिन्तन करते हैं।

कृष्ण या विष्णु ही हर वस्तु के वास्तविक उद्गम हैं। वेदों में कहा गया है— *यस्य भाषा सर्वमिदं विभाति।* परम सत्य का वर्णन *श्रीमद्भागवत* (१०.२८.१५) में *सत्यं ज्ञानमनन्तम् यद्ब्रह्मज्योति सनातनम्* के रूप में हुआ है। यह ब्रह्मज्योति सनातन है फिर भी कृष्ण पर आश्रित है (*ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्*)। *ब्रह्म-संहिता* का कथन है कि भगवान् सर्वव्यापी हैं। *अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थम्।* वे इस ब्रह्माण्ड के भीतर हैं और परमाणु के भीतर परमात्मा रूप में हैं। *यस्य प्रभा प्रभवतोजगदण्डकोटि-कोटि ष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम्*—ब्रह्म भी भगवान् से स्वतंत्र नहीं। अत: दार्शनिक जो कुछ भी वर्णन करता है, वह अन्ततोगत्वा कृष्ण या विष्णु ही है (*सर्वं खल्विदं ब्रह्म, परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्*)। ज्ञान की विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार भगवान् विष्णु का वर्णन भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है, किन्तु यथार्थत: वे हर वस्तु के उद्गम हैं।

अनन्य भक्त होने के कारण देवकी जान चुकी थीं कि वही भगवान् विष्णु उनके पुत्र-रूप में प्रकट हुए हैं। इसीलिए वसुदेव की प्रार्थना के बाद देवकी ने प्रार्थना की। वे अपने भाई की क्रूरता के कारण अत्यधिक डरी हुई थीं। देवकी ने कहा, ''हे प्रभु! नारायण, भगवान् राम, शेष, वराह, नृसिंह, वामन, बलदेव तथा विष्णु से उद्भूत ऐसे ही असंख्य अवतार जो आपके नित्य रूप हैं उन्हें वेदों ने मूल रूप माना है। आप मूल रूप हैं क्योंकि अवतार के रूप में आपके सभी स्वरूप इस भौतिक सृष्टि के परे हैं। आपका स्वरूप इस जगत की सृष्टि के पहले भी विद्यमान था। आपके स्वरूप नित्य तथा सर्वव्यापी हैं। ये स्वतोतेजस्वी, परिवर्तनरहित तथा भौतिक गुणों द्वारा अकलुषित हैं। ऐसे नित्य रूप ज्ञान से तथा

आनन्द से पूर्ण हैं—वे सतोगुणी हैं और विभिन्न लीलाओं में लगे रहते हैं। आप किसी एक रूप तक ही सीमित नहीं हैं—ऐसे दिव्य शाश्वत स्वरूप आत्माराम हैं। मैं अब समझ गई हूँ कि आप भगवान् विष्णु हैं।'' इस तरह हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भगवान् विष्णु ही सब कुछ हैं यद्यपि वे सारी वस्तुओं से भिन्न भी हैं। यही *अचिन्त्यभेदाभेदतत्त्व* दर्शन है।

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने
महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते
भवानेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

नष्टे—संहार के बाद; लोके—विश्व के; द्वि-परार्ध-अवसाने—लाखों वर्षों के बाद (ब्रह्मा की आयु); महा-भूतेषु—पाँच प्रारम्भिक तत्त्वों (क्षिति, जल, पावक, गगन तथा समीर) में; आदि-भूतम् गतेषु—इन्द्रिय-बोध के सूक्ष्म तत्त्वों के भीतर प्रवेश करते हैं; व्यक्ते—प्रकट होने पर; अव्यक्तम्—अव्यक्त में; काल-वेगेन—काल के वेग से; याते—प्रवेश करता है; भवान्—आप; एकः—केवल एक; शिष्यते—रहता है; अशेष-संज्ञः—विभिन्न नामों से युक्त वही एक।

लाखों वर्षों बाद विश्व-संहार के समय जब सारी व्यक्त तथा अव्यक्त वस्तुएँ काल के वेग से नष्ट हो जाती हैं, तो पाँचों स्थूल तत्त्व सूक्ष्म स्वरूप ग्रहण करते हैं और व्यक्त वस्तुएँ अव्यक्त बन जाती हैं। उस समय आप ही रहते हैं और आप अनन्त शेष-नाग कहलाते हैं।

तात्पर्य : संहार के समय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश ये पाँच स्थूल तत्त्व मन, बुद्धि तथा अहंकार में प्रवेश कर जाते हैं और सारा विश्व उन भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति में प्रवेश करता है, जो हर वस्तु के उद्गम होने के कारण, बचे रहते हैं। इसीलिए भगवान् शेष-नाग, आदि पुरुष तथा अन्य अनेक नामों से जाने जाते हैं।

इसलिए देवकी ने प्रार्थना की, ''लाखों वर्षों बाद जब ब्रह्मा की आयु पूरी हो जाती है, तो इस विराट जगत का संहार होता है। उस समय पाँचों तत्त्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश *महत् तत्त्व* में प्रवेश करते हैं। यह महत् तत्त्व समय के वेग से अव्यक्त सम्पूर्ण भौतिक शक्ति में प्रवेश करता है और यह सम्पूर्ण भौतिक शक्ति शक्तिमान *प्रधान* में तथा यह प्रधान आप में प्रवेश करता है। इसलिए सम्पूर्ण जगत के संहार के बाद केवल आप अपने दिव्य नाम, रूप, गुण तथा साज-सामान के साथ रहते हैं।

हे प्रभु! मैं आपको नमस्कार करती हूँ क्योंकि आप अव्यक्त सम्पूर्ण शक्ति के निर्देशक हैं और

भौतिक प्रकृति के चरम आगार हैं। हे प्रभु! यह समूचा विराट जगत क्षण से लेकर वर्षपर्यन्त की अवधिकाल के प्रभाव के अन्तर्गत है। सबके सब आपके निर्देशानुसार कार्य करते हैं। आप सभी के आदि निर्देशक हैं और समस्त शक्तियों के आगार हैं।''

योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो
चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ।
निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयां-
स्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; अयम्—यह; कालः—काल (मिनट, घंटा, सेकंड); तस्य—उसका; ते—तुम्हारा; अव्यक्त-बन्धो—हे प्रभु! आप अव्यक्त के प्रारम्भकर्ता हैं (महत् तत्त्व या प्रकृति); चेष्टाम्—प्रयास या लीलाएँ; आहुः—कहा जाता है; चेष्टते—कार्य करता है; येन—जिससे; विश्वम्—सम्पूर्ण सृष्टि; निमेष-आदिः—काल के सूक्ष्म अंश आदि; वत्सर-अन्तः—वर्ष के अन्त तक; महीयान्—शक्तिशाली; तम्—आपको; त्वा ईशानम्—परम नियंत्रक आपको; क्षेम-धाम—समस्त शुभ के आगार; प्रपद्ये—मैं पूरी तरह आपकी शरणागत में हूँ।

हे भौतिक शक्ति के प्रारम्भकर्ता, यह अद्भुत सृष्टि शक्तिशाली काल के नियंत्रण में कार्य करती है, जो सेकंड, मिनट, घंटा तथा वर्षों में विभाजित है। यह काल तत्त्व, जो लाखों वर्षों तक फैला हुआ है, भगवान् विष्णु का ही अन्य रूप है। आप अपनी लीलाओं के लिए काल के नियंत्रक की भूमिका अदा करते हैं, किन्तु आप समस्त सौभाग्य के आगार हैं। मैं पूरी तरह आपकी शरणागत हूँ।

तात्पर्य : जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* (५.५२) में कहा गया है—

यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणां

राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः ।

यस्याज्ञया भ्रमति संभृतकालचक्रो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

''सूर्य समस्त ग्रहों का राजा है, जिसमें ऊष्मा तथा प्रकाश की असीमित शक्ति रहती है। मैं उन आदि भगवान् गोविंद की पूजा करता हूँ जिनके वशीभूत होकर भगवान् के चक्षुरूप सूर्य भी नित्य काल की स्थिर धुरी में चक्कर लगाता है।'' यद्यपि हम विश्व (प्रकृति) को विराट तथा अद्भुत देखते हैं, किन्तु यह काल की सीमाओं के भीतर है। इस काल पर भी भगवान् का नियंत्रण रहता है, जिसकी

पुष्टि *भगवद्गीता* द्वारा होती है (*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*)। प्रकृति काल के अधीन है। असल में हर वस्तु काल के अधीन है और काल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के वश में है। अतः भगवान् को समय के घातक आक्रमणों से कोई भय नहीं रहता। काल का मापन सूर्य (*सविता*) की गति से किया जाता है। यहाँ तक कि हर मिनट, सेकंड, हर दिन, हर रात, हर मास तथा हर वर्ष की गणना सूर्य की गति से की जा सकती है। किन्तु सूर्य स्वतंत्र नहीं है क्योंकि वह काल के अधीन है। *भ्रमति संभृतकालचक्रः*—सूर्य कालचक्र के भीतर घूमता रहता है। सूर्य काल के नियंत्रण में है और काल भगवान् के द्वारा नियंत्रित होता है। अतः भगवान् को काल का तनिक भी डर नहीं रहता।

यहाँ पर भगवान् को *अव्यक्तबन्धु* अर्थात् सम्पूर्ण जगत की गतियों के प्रारम्भकर्ता कहकर सम्बोधित किया गया है। कभी-कभी प्रकृति की तुलना कुम्हार के चाक से की जाती है। जब चाक घूमता रहता है, तो उसे कौन गति देता है? उत्तर होगा कुम्हार। यद्यपि कभी-कभी चाक की गति ही दिखती है, किन्तु कुम्हार नहीं दिखता। इसीलिए भगवान् जो विराट जगत की गति के लिए उत्तरदायी हैं *अव्यक्तबन्धु* कहलाते हैं। सारी वस्तुएँ काल की सीमाओं के अन्तर्गत हैं, किन्तु काल भगवान् के निर्देश पर चलता है, अतः भगवान् काल की सीमाओं से बँधे हुए नहीं हैं।

मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्
लोकान्सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ।
त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य
सुस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ २७॥

शब्दार्थ

मर्त्यः—जीव, जिनकी मृत्यु निश्चित है; मृत्यु-व्याल-भीतः—मृत्यु रूपी सर्प से भयभीत; पलायन्—भागते हुए; लोकान्—विभिन्न लोकों को; सर्वान्—सभी; निर्भयम्—निर्भीकता; न अध्यगच्छत्—प्राप्त नहीं करता; त्वत्-पाद-अब्जम्—आपके चरणकमलों की; प्राप्य—शरण पाकर; यदृच्छया—सौभाग्यवश, भगवान् तथा गुरु की कृपा से (गुरुकृपा, कृष्णकृपा); अद्य—इस समय; सु-स्थः—अविचलित तथा शान्त; शेते—सो रहे हैं; मृत्युः—मृत्यु; अस्मात्—उन लोगों से; अपैति—दूर भागता है।

इस भौतिक जगत में कोई भी व्यक्ति जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा रोग—इन चार नियमों से छूट नहीं पाया भले ही वह विविध लोकों में क्यों न भाग जाए। किन्तु हे प्रभु, अब चूँकि आप प्रकट हो चुके हैं अतः मृत्यु आपके भय से दूर भाग रही है और सारे जीव आपकी दया से आपके चरणकमलों की शरण प्राप्त करके पूर्ण मानसिक शान्ति की नींद सो रहे हैं।

तात्पर्य : जीवों की विभिन्न कोटियाँ हैं, किन्तु सभी जीव मृत्यु से भयभीत रहते हैं। कर्मियों का सर्वोच्च लक्ष्य स्वर्गलोक को जाना है जहाँ दीर्घायु प्राप्त होती है। जैसाकि *भगवद्गीता* (८.१७) में कहा गया है—*सहस्रयुग पर्यन्तम् अहर्यद् ब्रह्मणो विदुः*—ब्रह्मा का एक दिन १००० युगों के बराबर होता है और प्रत्येक युग में ४३,००,००० वर्ष होते हैं। इसी तरह ब्रह्मा की रात्रि १००० गुणित ४३,००,००० वर्ष के बराबर होती है। इस विधि से हम ब्रह्मा के मास तथा वर्ष की गणना कर सकते हैं, किन्तु करोड़ों वर्षों तक जीवित रहने वाले (*द्विपरार्धकाल*) ब्रह्मा को भी मरना पड़ता है। वैदिक शास्त्र के अनुसार स्वर्गलोक के वासी १०,००० वर्ष तक जीवित रहते हैं। और जिस तरह ब्रह्मा का एक दिन हमारे ४,३०,००,००,००० सालों के बराबर गिना जाता है, स्वर्गलोक में एक दिन हमारे ६ मास के तुल्य होता है। इसीलिए कर्मीजन स्वर्गलोक जाने की इच्छा रखते हैं, किन्तु इससे वे मृत्यु से मुक्त नहीं हो सकते। इस जगत में ब्रह्मा से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक को मरना होता है। इसीलिए यह जगत *मर्त्यलोक* कहलाता है। *भगवद्गीता* (८.१६) में कृष्ण कहते हैं—*आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन*—जब तक मनुष्य इस लोक में या ब्रह्मलोक अथवा इस ब्रह्माण्ड के अन्य किसी लोक में रहता है तब तक उसे जन्म-जन्मांतर *कालचक्र* के वशीभूत होना होता है (*भूत्वा भूत्वा प्रलीयते*)। किन्तु यदि मनुष्य भगवद्धाम वापस लौट जाता है (*यद्गत्वा न निवर्तन्ते*) तो उसे काल की सीमा में फिर से प्रवेश नहीं करना पड़ता। अतः जिन भक्तों ने भगवान् के चरणकमलों में शरण ले रखी है उन्हें भगवान् के इस आश्वासन के अन्तर्गत सुख की नींद सोना चाहिए। *भगवद्गीता* (४.९) में पुष्टि की गई है*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति* इस शरीर को त्यागने के बाद कृष्ण-भक्त को इस जगत में फिर से आने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

जीव की वैधानिक स्थिति शाश्वत है (*न हन्यते हन्यमाने शरीरे, नित्यः शाश्वतोऽयम्*)। प्रत्येक जीव नित्य है। इस जगत में आ गिरने के कारण ही वह इस ब्रह्माण्ड में घूमता रहता है और लगातार एक के बाद दूसरा शरीर धारण करता रहता है। श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।

गुरु-कृष्ण प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज॥

(*चै.च. मध्य,* १९.१५१)

इस ब्रह्माण्ड में सारे लोग ऊपर-नीचे घूम रहे हैं, किन्तु जो भाग्यशाली होता है, वह गुरु-कृपा से कृष्णभावनामृत के सम्पर्क में आता है और भक्तिमार्ग पर अग्रसर होता है। तब उसे मृत्यु का भय नहीं रह जाता उसका जीवन शाश्वत हो जाता है। जब कृष्ण प्रकट होते हैं, तो प्रत्येक व्यक्ति के मन से मृत्यु का भय जाता रहता है फिर भी देवकी को लगा, ''यद्यपि आप हमारे पुत्र रूप में उत्पन्न हुए हैं, तो भी हम कंस से भयभीत हैं।'' वे थोड़ा-कुछ मोहग्रस्त थीं। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसा क्यों हो रहा है, अत: उन्होंने भगवान् से निवेदन किया कि वे उन्हें तथा वसुदेव को इस भय से मुक्त करें।

इस प्रसंग में ध्यान देना होगा कि चन्द्रमा स्वर्ग का एक लोक है। वेदों से ज्ञात होता है कि जो चन्द्रमा को जाता है उसे दस हजार वर्ष की आयु प्राप्त होती है, जिसमें वह अपने पुण्यों के फलों का भोग करता है। यदि हमारे तथाकथित वैज्ञानिक चन्द्रलोक जा रहे हैं, तो उन्हें यहाँ वापस नहीं आना चाहिए। अत: हम निस्संदेह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे चन्द्रलोक तक पहुँचे ही नहीं। चन्द्रमा तक जाने के लिए पुण्यकर्मों की योग्यता चाहिए। तभी कोई वहाँ जाकर रह सकता है। यदि कोई व्यक्ति चन्द्रमा तक गया है, तो भला वह इस लोक को फिर से क्यों लौटने लगा जहाँ जीवन-अवधि इतनी कम है ?

स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्न-
स्त्राहि त्रस्तान्भृत्यवित्रासहासि ।
रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं
मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

स:—वह; त्वम्—आप; घोरात्—अत्यन्त क्रूर; उग्रसेन-आत्मजात्—उग्रसेन के पुत्र से; न:—हमारी; त्राहि—रक्षा कीजिए; त्रस्तान्—अत्यधिक भयभीत; भृत्य-वित्रास-हा असि—आप अपने दासों के भय को दूर करने वाले हैं; रूपम्—अपने विष्णु रूप में; च—भी; इदम्—इस; पौरुषम्—भगवान् रूप को; ध्यान-धिष्ण्यम्—ध्यान के द्वारा अनुभव किया गया; मा—नहीं; प्रत्यक्षम्—प्रत्यक्ष; मांस-दृशाम्—अपनी भौतिक आँखों से देखने वालों को; कृषीष्ठा:—होइए।

हे प्रभु, आप अपने भक्तों के भय को दूर करने वाले हैं अतएव आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप कंस के विकराल भय से हमें बचाइए और हमें संरक्षण प्रदान कीजिए। योगीजन आपके विष्णु रूप का ध्यान में अनुभव करते हैं। कृपया इस रूप को उनके लिए अदृश्य बना दीजिए जो केवल भौतिक आँखों से देख सकते हैं।''

तात्पर्य : इस श्लोक में *ध्यान-धिष्ण्यम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि भगवान् विष्णु के

स्वरूप का ध्यान योगीजन करते हैं (*ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिन:*)। देवकी ने विष्णुरूप में प्रकट भगवान् से प्रार्थना की कि वे इस रूप को छिपा लें क्योंकि वे भगवान् को एक सामान्य शिशु के रूप में देखना चाहती हैं—एक शिशु-रूप में जिसे सभी लोग भौतिक आँखों से प्रत्यक्ष देख सकते हैं। देवकी यह देखना चाह रही थीं कि क्या सचमुच भगवान् प्रकट हुए हैं अथवा वे विष्णु स्वरूप का स्वप्न देख रहीं हैं। वे सोचने लगीं कि यदि कंस आ जाए तो वह विष्णु रूप को देखकर तुरन्त ही बालक का वध कर देगा, किन्तु यदि वह मानवी बालक को देखे तो हो सकता है कि कुछ विचार करे। देवकी उग्रसेन आत्मज से भयभीत थीं अर्थात् उग्रसेन तथा उनके अनुचरों से नहीं अपितु उग्रसेन के पुत्र से। इस तरह उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि वे इस भय को दूर करें क्योंकि वे अपने भक्तों को सदैव संरक्षण प्रदान करने के लिए (*अभयम्*) उद्यत रहते हैं। उन्होंने प्रार्थना की, ''हे प्रभु! आप उग्रसेन के पुत्र कंस के क्रूर हाथों से मुझे बचाइए। आपसे मैं इस भयावह स्थिति से उबारने के लिए प्रार्थना कर रही हूँ क्योंकि आप अपने सेवकों को संरक्षण देने के लिए सदैव तैयार रहते हैं।'' भगवान् ने *भगवद्गीता* में इस कथन की पुष्टि यह कहकर की है, ''हे अर्जुन! तुम संसार को घोषित कर सकते हो कि मेरा भक्त कभी भी विनष्ट नहीं हो सकता।''

भगवान् से रक्षा करने की इस प्रकार प्रार्थना करते हुए देवकी ने अपना मातृ-स्नेह व्यक्त किया, ''मैं जानती हूँ कि आपके इस दिव्य रूप की अनुभूति प्राय: बड़े-बड़े ऋषियों के ध्यान में होती है, किन्तु मैं अब भी डर रही हूँ क्योंकि ज्योंही कंस को पता चल जाएगा कि आप प्रकट हो चुके हैं, तो वह आपको क्षति पहुँचा सकता है। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि इस समय आप भौतिक आँखों से अदृश्य हो जाँए।'' दूसरे शब्दों में, उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि वे सामान्य बालक का रूप धारण कर लें। ''मुझे अपने भाई कंस से डरने का एक ही कारण है और वह है आपका प्राकट्य। हे भगवान् मधुसूदन! कंस को पता चल सकता है कि आप पहले ही जन्म ले चुके हैं। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप अपने इस चतुर्भुज रूप को छिपा लें जो विष्णु के चार चिह्नों अर्थात् शंख, चक्र, गदा और कमल को धारण किए हुए है। हे प्रभु! विराट जगत के संहार के बाद आप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को उदरस्थ करने वाले हैं फिर भी आप अपनी अनन्य कृपा से मेरे उदर से उत्पन्न हुए हैं। मुझे आश्चर्य है कि आप अपने भक्त को प्रसन्न करने के लिए सामान्य मनुष्यों जैसा कार्य करते हैं।''

देवकी कंस से इतनी भयभीत थीं कि उन्हें विश्वास ही नहीं हो पा रहा था कि कंस प्रत्यक्ष भगवान् विष्णु को मारने में असमर्थ होगा। इसीलिए मातृस्नेहवश उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि वे अन्तर्धान हो जाँय। यद्यपि भगवान् के अन्तर्धान होने से कंस यह सोचकर देवकी को अधिक सताएगा कि उसने अपने नवजात शिशु को कहीं छिपा दिया है, किन्तु वे नहीं चाहती थीं कि दिव्य बालक को सताया और मारा जाए। इसीलिए उन्होंने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की कि वे अन्तर्धान हो जाँय। बाद में, जब उन्हें सताया जाएगा तो वे अपने मन में उनके विषय में सोचेंगी।

जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन ।
समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

जन्म—जन्म; ते—तुम्हारा, भगवान् का; मयि—मेरे (गर्भ) में; असौ—वह कंस; पापः—पापी; मा विद्यात्—हो सकता है कि समझ न पाए; मधुसूदन—हे मधुसूदन; समुद्विजे—चिन्ता से पूर्ण मैं; भवत्-हेतोः—आपके प्रकट होने से; कंसात्—कंस से, जिसका मुझे कटु अनुभव है; अहम्—मैं; अधीर-धीः—अधिकाधिक उद्विग्न हूँ।

हे मधुसूदन, आपके प्रकट होने से मैं कंस के भय से अधिकाधिक अधीर हो रही हूँ। अतः कुछ ऐसा कीजिए कि वह पापी कंस यह न समझ पाए कि आपने मेरे गर्भ से जन्म लिया है।

तात्पर्य : देवकी ने भगवान् को मधुसूदन नाम से सम्बोधित किया। उन्हें ज्ञात था कि भगवान् ने मधु जैसे अनेक असुरों का वध किया है, जो कंस से सैकड़ों-हजारों गुना बलशाली थे तो भी दिव्य बालक के स्नेहवश उन्हें आशंका हो रही थी कि कंस उसका वध कर देगा। भगवान् की असीम शक्ति को न सोचकर वे स्नेहवश भगवान् के विषय में सोच रही थीं इसीलिए उन्होंने दिव्य बालक से अन्तर्धान होने की प्रार्थना की।

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

उपसंहर—वापस ले लीजिए; विश्वात्मन्—हे विश्वव्यापी भगवान्; अदः—उस; रूपम्—स्वरूप को; अलौकिकम्—इस जगत में अप्राकृतिक; शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म—शंख, चक्र, गदा तथा कमल से युक्त; श्रिया—इन ऐश्वर्यों से युक्त; जुष्टम्—अलंकृत; चतुः-भुजम्—चार हाथों वाले।

हे प्रभु, आप सर्वव्यापी भगवान् हैं और आपका यह चतुर्भुज रूप, जिसमें आप शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किए हुए हैं, इस जगत के लिए अप्राकृत है। कृपया इस रूप को समेट

लीजिए (और सामान्य मानवी बालक बन जाइए जिससे मैं आपको कहीं छिपाने का प्रयास कर सकूँ)।

तात्पर्य : देवकी भगवान् को छिपाने की सोच रही थीं। वे अन्य बालकों की तरह इन्हें कंस के हाथों सौंपना नहीं चाह रही थीं। यद्यपि वसुदेव ने वचन दिया था कि वे कंस को हर बालक दे दिया करेंगे, किन्तु इस बार वे अपना वचन भंग करके बालक को कहीं छिपा देना चाहते थे। किन्तु इस अद्भुत चतुर्भुज रूप के कारण उन्हें छिपा सकना असम्भव हो रहा था।

विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशान्ते
यथावकाशं पुरुषः परो भवान् ।
बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभू-
दहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

विश्वम्—सम्पूर्ण विश्व को; यत् एतत्—चर तथा अचर सृष्टियों से युक्त; स्व-तनौ—अपने शरीर के भीतर; निशा-अन्ते—संहार के समय; यथा-अवकाशम्—बिना कठिनाई के आपके शरीर में शरण; पुरुषः—भगवान्; परः—दिव्य; भवान्—आप; बिभर्ति—पालन करते हैं; सः—वही (भगवान्); अयम्—वह रूप; मम—मेरा; गर्भ-गः—मेरे गर्भ में आया; अभूत्—हुआ; अहो—ओह; नृ-लोकस्य—जीवों के इस जगत का; विडम्बनम्—सोच पाना कठिन है; हि—निस्सन्देह; तत्—वह (गर्भ)।

संहार के समय चर तथा अचर जीवों से युक्त सारी सृष्टियाँ आपके दिव्य शरीर में प्रवेश कर जाती हैं और बिना कठिनाई के वहीं ठहरी रहती हैं। किन्तु अब वही दिव्य रूप मेरे गर्भ से जन्म ले चुका है। लोग इस पर विश्वास नहीं करेंगे और मैं हँसी की पात्र बन जाऊँगी।

तात्पर्य : *चैतन्य-चरितामृत* में बतलाया गया है कि भगवान् की प्रेमा-भक्ति दो प्रकार की होती है *ऐश्वर्यपूर्ण* तथा *ऐश्वर्य शिथिल*। असली ईशप्रेम ऐश्वर्य शिथिल भक्ति से—शुद्ध प्रेम के बल पर—प्रारम्भ होता है।

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन
सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

(*ब्रह्म-संहिता* ५.३८)

शुद्ध भक्तजन अपनी आँखों में प्रेम का अंजन लगाकर भगवान् श्यामसुन्दर, मुरलीधर को दोनों

हाथों में बाँसुरी झुलाते हुए देखना चाहते हैं। यह स्वरूप वृन्दावनवासियों के लिए उपलब्ध है, जो भगवान् के उस विष्णु अथवा नारायण रूप से प्रेम नहीं करते जो वैकुण्ठ में पूजित हैं जहाँ भक्तगण उनके ऐश्वर्य की प्रशंसा करते हैं अपितु वे उनके श्यामसुन्दर स्वरूप से प्रेम करते हैं। यद्यपि देवकी को वृन्दावन पद प्राप्त नहीं है, किन्तु वे वृन्दावन पद के निकट हैं। वृन्दावन पद पर कृष्ण की माता यशोदा हैं जबकि मथुरा तथा द्वारका पद पर कृष्ण की माता देवकी हैं। मथुरा तथा द्वारका में भगवान् का प्रेम ऐश्वर्य से मिश्रित रहता है, किन्तु वृन्दावन में भगवान् का ऐश्वर्य प्रदर्शित नहीं होता।

भगवान् की प्रेमाभक्ति की पाँच अवस्थाएँ हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य। देवकी वात्सल्य पद पर हैं। वे अपने शाश्वत पुत्र कृष्ण के साथ प्रेमव्यापार करना चाहती थीं इसीलिए वे चाहती थीं कि भगवान् अपना विष्णु का ऐश्वर्यशाली स्वरूप समेट लें। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की टीका में इस तथ्य पर विशेष प्रकाश डाला है।

भक्ति, भगवान् तथा *भक्त*—ये भौतिक जगत से सम्बद्ध नहीं रहते। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१४.२६) में हुई है—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।

स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

''जो अनन्य भक्ति के आध्यात्मिक कार्यों में अपने को लगाता है, वह तुरन्त ही प्रकृति के गुणों को लाँघकर आध्यात्मिक पद पर उठ जाता है।'' भक्ति में मनुष्य प्रारम्भ से ही दिव्य पद पर स्थित हो जाता है। अतएव वसुदेव तथा देवकी शुद्ध भक्ति पद पर स्थित होने से इस भौतिक जगत से परे हैं और उन्हें भौतिक भय नहीं सताता। किन्तु दिव्य जगत में शुद्ध भक्ति के कारण, गहन प्रेम के फलस्वरूप ऐसा ही भय बना रहता है।

जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है (*भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः*) तथा *श्रीमद्भागवत* में भी पुष्टि हुई है (*भक्त्याहमेकया ग्राह्यः*) भक्ति के बिना भगवान् की आध्यात्मिक स्थिति को समझा नहीं जा सकता। भक्ति की तीन अवस्थाएँ मानी जा सकती हैं—*गुणीभूत, प्रधानीभूत* तथा *केवल* और इनके भी तीन विभेद हैं—*ज्ञान, ज्ञानमयी* तथा *रति* या *प्रेमा* अर्थात् सामान्य ज्ञान, ज्ञान-मिश्रित प्रेम तथा शुद्ध प्रेम। ज्ञान से, बिना किसी परिवर्तन के, केवल दिव्य आनन्द का अनुभव किया

जा सकता है। यह अनुभूति *मानभूति* कहलाती है। ज्ञानमयी अवस्था में भगवान् के दिव्य ऐश्वर्यों का अनुभव होता है। किन्तु शुद्ध प्रेम या रति अवस्था में पहुँच कर भगवान् के कृष्ण या राम रूप की अनुभूति होती है। यही वांछनीय है। माधुर्य रस में तो मनुष्य भगवान् से अनुरक्त हो जाता है (*श्रीविग्रहनिष्ठरूपादि*)। तब भगवान् तथा भक्त में प्रेम-व्यापार चालू होता है।

व्रजभूमि या वृन्दावन में अपने हाथ में बाँसुरी लिए हुए कृष्ण की विशेष महत्ता *माधुरी... विराजते* द्वारा वर्णित है। हाथ में बाँसुरी लिए भगवान् का स्वरूप अत्यन्त आकर्षक है और इस स्वरूप से श्रीमती राधारानी या राधिका विशेष आकृष्ट होती हैं। वे कृष्ण के साथ आनन्दमय सान्निध्य का भोग करती हैं। कभी-कभी लोग यह नहीं समझ पाते कि *श्रीमद्भागवत* में राधिका के नाम का उल्लेख क्यों नहीं हुआ। वास्तव में राधिका को *आराधन* शब्द से समझा जा सकता है, जिसका अर्थ है कि वह कृष्ण के साथ उच्चतम प्रेमालाप का आनन्द भोग करती हैं।

देवकी नहीं चाहती थीं कि विष्णु को जन्म देने के कारण उनका उपहास हो अत: वे दो भुजाओं वाले कृष्ण को चाह रहीं थीं। इसीलिए उन्होंने भगवान् से अपना स्वरूप बदलने के लिए प्रार्थना की।

श्रीभगवानुवाच
त्वमेव पूर्वसर्गेऽभू: पृश्नि: स्वायम्भुवे सति ।
तदायं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मष: ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने देवकी से कहा; त्वम्—तुम; एव—निस्सन्देह; पूर्व-सर्गे—पूर्व युग में; अभू:—थीं; पृश्नि:—पृश्नि नामक; स्वायम्भुवे—स्वायम्भुव मनु के युग में; सति—हे सती; तदा—उस समय; अयम्—यह वसुदेव; सुतपा—सुतपा; नाम—नामक; प्रजापति:—प्रजापति; अकल्मष:—निर्मल व्यक्ति।

श्रीभगवान् ने उत्तर दिया: हे सती माता, आप अपने पूर्व जन्म में स्वायंभुव मनु कल्प में पृश्नि नाम से विख्यात थीं और वसुदेव सुतपा नामक अत्यन्त पवित्र प्रजापति थे।

तात्पर्य : भगवान् ने यह स्पष्ट कर दिया कि देवकी पहली बार ही उन की माता नहीं बनीं प्रत्युत वे इसके पूर्व भी उनकी माता थीं। कृष्ण शाश्वत हैं और वे अपने भक्तों में से ही शाश्वत रूप से अपने माता-पिता का चुनाव करते रहते हैं। इसके पूर्व भी देवकी भगवान् की माता और वसुदेव उनके पिता थे। तब उनके नाम क्रमश: पृश्नि तथा सुतपा थे। जब भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण प्रकट होते हैं, तो वे माता-पिता का चुनाव करते हैं और वे भी कृष्ण को पुत्र रूप में स्वीकार करते हैं। यह लीला

निरन्तर चलती रहती है इसलिए *नित्यलीला* कहलाती है। इस तरह यह आश्चर्य या उपहास की बात न थी। भगवान् ने स्वयं *भगवद्गीता* (४.९) में स्पष्ट किया है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"हे अर्जुन! जो मेरे प्राकट्य तथा कार्यों की दिव्य प्रकृति को जान लेता है, वह इस शरीर को त्यागने के बाद इस भौतिक जगत में फिर से जन्म नहीं लेता अपितु मेरे नित्य धाम को प्राप्त करता है।" मनुष्य को चाहिए कि भगवान् के प्राकट्य तथा तिरोधान को वैदिक महाजनों से समझे, कल्पना से नहीं। जो भगवान् के विषय में कल्पना का अनुसरण करता है, वह निन्दनीय है।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।

परं भावम् अजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

(*भगवद्गीता* ९.११)

भगवान् अपने *परं भावम्* के द्वारा अपने भक्त के पुत्र रूप में प्रकट होते हैं। *भाव* शब्द शुद्ध प्रेम अवस्था का द्योतक है, जिसका भौतिक व्यापारों से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

युवां वै ब्रह्मणादिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः ।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

युवाम्—तुम दोनों (पृश्नि तथा सुतपा); वै—निस्सन्देह; ब्रह्मणा आदिष्टौ—ब्रह्मा (जो पितामह या प्रजापतियों के पिता कहलाते हैं) की आज्ञा से; प्रजा-सर्गे—सन्तान उत्पन्न करने में; यदा—जब; ततः—तत्पश्चात्; सन्नियम्य—पूर्ण नियंत्रण में रखते हुए; इन्द्रिय-ग्रामम्—इन्द्रियों को; तेपाथे—की; परमम्—महान; तपः—तपस्या।

जब भगवान् ब्रह्मा ने तुम दोनों को सन्तान उत्पन्न करने का आदेश दिया तो तुम दोनों ने पहले अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हुए कठोर तपस्या की।

तात्पर्य : यहाँ पर यह आदेश है कि सन्तान उत्पत्ति करते समय इन्द्रियों का किस तरह उपयोग किया जाए। वैदिक नियमों के अनुसार संतान उत्पन्न करने से पहले इन्द्रियों का पूर्ण नियंत्रण करना चाहिये। यह नियंत्रण *गर्भाधान संस्कार* के माध्यम से पूरा होता है। भारत में विविध यांत्रिक विधियों से गर्भ निरोध करने पर बड़ा आन्दोलन छिड़ा हुआ है, किन्तु जन्म पर कभी यांत्रिक विधि से नियंत्रण नहीं किया जा सकता। जैसाकि *भगवद्गीता* (१३.९) में कहा गया है—*जन्ममृत्युजराव्याधि*

दु:खदोषानुदर्शनम्—जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा रोग ये इस भौतिक जगत के प्रमुख दुख हैं। लोग जन्म को नियंत्रित करना चाह रहे हैं, किन्तु मृत्यु पर नियंत्रण करने में असमर्थ हैं और यदि हम मृत्यु को नियंत्रण में नहीं कर सकते तो जन्म को भी नियंत्रण में नहीं ला सकते। दूसरे शब्दों में, जन्म को कृत्रिम ढंग से नियंत्रित करना मृत्यु पर कृत्रिम नियंत्रण करने से सुलभ नहीं है।

वैदिक सभ्यता के अनुसार गर्भाधान को धार्मिक नियमों के प्रतिकूल नहीं होना चाहिए। तभी जन्म दर पर नियंत्रण हो सकता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (७.११) में कहा गया है—*धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि*—जो काम (यौन) धर्म के विरुद्ध नहीं है, वह भगवान् का स्वरूप है। लोगों को शिक्षा दी जानी चाहिए कि किस तरह संस्कारों के द्वारा वे उत्तम सन्तान उत्पन्न करें। गर्भ को कृत्रिम साधनों से नहीं रोका जाना चाहिए क्योंकि इससे पशु-सभ्यता का जन्म होगा। धार्मिक नियमों का पालन करने वाला स्वत: गर्भ-निरोध का पालन करता है क्योंकि आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति जानता है कि काम का दुष्प्रभाव विविध प्रकार के दुखों के रूप में होता है (*बहुदु:खभाज*)। जो आध्यात्मिक रूप से उन्नत है, वह अनियंत्रित यौन में लिप्त नहीं होता। अत: काम को या अधिक सन्तान के जन्म को बलपूर्वक रोके जाने की बजाय लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा दी जानी चाहिए। तभी गर्भ निरोध स्वत: होने लगेगा।

यदि कोई आध्यात्मिक प्रगति करने पर तुल जाए तो वह तब तक सन्तान उत्पन्न नहीं करेगा जब तक वह उस सन्तान को भक्त न बना सके। *श्रीमद्भागवत* (५.५.१८) में कहा गया है—*पिता न स स्यात्*—जब तक मनुष्य अपनी सन्तान को *मृत्यु* से अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से बचा पाने में समर्थ न हो तब तक उसे पिता नहीं बनना चाहिए। किन्तु इसकी शिक्षा कहाँ दी जाती है? उत्तरदायी पिता कुत्तों और बिल्लियों की तरह सन्तानें नहीं उत्पन्न करता। लोगों को गर्भनिरोध के कृत्रिम साधनों को अपनाने के स्थान पर उन्हें कृष्णभावनामृत का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए क्योंकि तभी वे अपनी सन्तानों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझ सकेंगे। यदि ऐसी सन्तानें उत्पन्न की जा सकें जो भक्त बनें और जिन्हें जन्म-मृत्यु के मार्ग से पृथक् रहने की शिक्षा दी जा सके (*मृत्यु:संसारवर्त्मनि*) तो गर्भनिरोध की कोई आवश्यकता नहीं रहती बल्कि संतान उत्पन्न करने के लिए मनुष्य को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। गर्भनिरोध की कृत्रिम विधियाँ निरर्थक हैं। कोई सन्तान उत्पन्न करे या नहीं, किन्तु कुत्तों और

बिल्लियों जैसी जनसंख्या से मानव समाज कभी भी सुखी नहीं रह सकता। इसलिए लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा दिए जाने की आवश्यकता है, जिससे कुत्तों-बिल्लियों की तरह सन्तानें उत्पन्न करने के स्थान पर वे तपस्या करके भक्तों को जन्म दें। इससे उनके जीवन सफल हो जाएँगे।

वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु ।
सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४॥
शीर्णपर्णानिलाहारावुपशान्तेन चेतसा ।
मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

वर्ष—वर्षा; वात—तेज हवा; आतप—तेज धूप; हिम—कड़ाके की ठंड; घर्म—घाम; काल-गुणान् अनु—ऋतु परिवर्तनों के अनुसार; सहमानौ—सहन करके; श्वास-रोध—साँस रोककर, योगाभ्यास द्वारा; विनिर्धूत—मन में जमी मैल धुल जाती है; मनः-मलौ—मन भौतिक कल्मष से मुक्त होकर शुद्ध बन गया; शीर्ण—शुष्क, त्यक्त; पर्ण—पेड़ों के पत्ते; अनिल—तथा वायु; आहारौ—खाकर; उपशान्तेन—शान्त; चेतसा—पूर्ण संयमित मन से; मत्तः—मुझसे; कामान् अभीप्सन्तौ—कुछ वर माँगने की इच्छा से; मत्—मेरी; आराधनम्—पूजा; ईहतुः—तुम दोनों ने सम्पन्न की।

हे माता-पिता, तुम लोगों ने विभिन्न ऋतुओं के अनुसार वर्षा, तूफान, कड़ी धूप तथा कड़ाके की ठंड सभी प्रकार की असुविधाएँ सही थीं। तुमने शरीर के भीतर वायु रोकने के लिए प्राणायाम करके तथा केवल हवा और वृक्षों से गिरे सूखे पत्ते खाकर अपने मन से सारे मैल को साफ कर दिया था। इस तरह मेरे वर की इच्छा से तुम लोगों ने शान्त चित्त से मेरी पूजा की थी।

तात्पर्य : वसुदेव तथा देवकी को पुत्र रूप में भगवान् आसानी से नहीं मिले थे, न ही भगवान् यों ही किसी को अपना माता-पिता बनाते हैं। यहाँ हम देख सकते हैं कि वसुदेव तथा देवकी ने किस तरह अपने दिव्य पुत्र को प्राप्त किया। हमें भी अच्छी सन्तान प्राप्त करने के लिए यहाँ पर दिए गए नियमों का पालन करना चाहिए। हाँ, यह हर एक के लिए सम्भव नहीं कि उसे पुत्र-रूप में कृष्ण प्राप्त हों, किन्तु मानव समाज के लाभ के लिए अच्छे पुत्र तथा पुत्रियाँ तो उत्पन्न किए ही जा सकते हैं। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि यदि मनुष्य आध्यात्मिक जीवन-शैली का पालन नहीं करते तो कुत्ते-बिल्लियों की तरह जन्मी *वर्णसंकर* जनसंख्या में वृद्धि होगी और सारा जगत नरक तुल्य बन जाएगा। कृष्णभावनामृत का अभ्यास किए बिना मात्र कृत्रिम ढंग से जनसंख्या की वृद्धि रोकने के प्रयास व्यर्थ होंगे। इससे जनसंख्या बढ़ेगी जो वर्णसंकर होगी, अवांछित सन्तानें होंगी। अतः लोगों को यह शिक्षा देना श्रेयस्कर होगा कि किस तरह संयमपूर्वक सन्तानें उत्पन्न की जाँए न कि कुत्ते-बिल्लियों की तरह।

मानव जीवन शूकर या कूकर जैसा बनने के लिए नहीं अपितु *तपो दिव्यम्* अर्थात् दिव्य तप के लिए है। हर एक को *तपस्या* की शिक्षा दी जानी चाहिए। यद्यपि पृश्नि तथा सुतपा की तरह तपस्या कर पाना सम्भव नहीं रह गया, किन्तु शास्त्र में तपस्या की सरलतम विधि बतलाई गई है और वह है संकीर्तन आन्दोलन। कृष्ण जैसी सन्तान पाने के लिए तपस्या करने की किसी से आशा नहीं की जा सकती, किन्तु हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन मात्र से (*कीर्तनाद् एव कृष्णस्य*) वह इतना पवित्र बन सकता है कि इस जगत के सारे कल्मष से मुक्त होकर (*मुक्तसंगः*) भगवद्धाम वापस जा सके (*परं व्रजेत*)। अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन लोगों को सुख के कृत्रिम साधन अपनाने की शिक्षा नहीं देता अपितु शास्त्र द्वारा संस्तुत सुख का असली मार्ग—हरे कृष्ण मंत्र कीर्तन—अपनाने और भौतिक जीवन में हर प्रकार से पूर्ण बनने की शिक्षा देता है।

एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् ।
दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह से; वाम्—तुम दोनों को; तप्यतोः—तपस्या करते; तीव्रम्—अत्यन्त कठोर; तपः—तपस्या; परम-दुष्करम्—सम्पन्न करना कठिन; दिव्य-वर्ष—स्वर्गलोक के अनुसार काल गणना; सहस्राणि—हजार; द्वादश—बारह; ईयुः—बीत गए; मत्-आत्मनोः—मेरी चेतना में लगे रहकर।

इस तरह तुम दोनों ने मेरी चेतना (कृष्णभावना) में कठिन तपस्या करते हुए बारह हजार दिव्य वर्ष बिता दिए।

तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषानघे ।
तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥ ३७ ॥
प्रादुरासं वरदराड्युवयोः कामदित्सया ।
ब्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

तदा—तब (बारह हजार दिव्य वर्ष बीत जाने पर); वाम्—तुम दोनों के साथ; परितुष्टः अहम्—मैं संतुष्ट हुआ; अमुना—इससे; वपुषा—कृष्ण के रूप में; अनघे—हे निष्पाप माता; तपसा—तपस्या के द्वारा; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; नित्यम्—निरन्तर (लगे रहकर); भक्त्या—भक्ति के द्वारा; च—भी; हृदि—हृदय के भीतर; भावितः—स्थिर (संकल्प); प्रादुरासम्—तुम्हारे समक्ष (उसी तरह) प्रकट हुआ; वर-द-राट्—श्रेष्ठ वरदायक; युवयोः—तुम दोनों का; काम-दित्सया—इच्छा पूरी करने के लिए; ब्रियताम्—तुमसे मन की बात कहने के लिए पूछा; वरः—वरदान के लिए; इति उक्ते—इस तरह अनुरोध किए जाने वाले; मादृशः—मेरी ही तरह; वाम्—तुम दोनों का; वृतः—पूछा गया था; सुतः—तुम्हारे पुत्र रूप में (तुमने मेरे जैसा पुत्र चाहा था)।

हे निष्पाप माता देवकी, उन बारह हजार दिव्य वर्षों के बीत जाने पर, जिनमें तुम अपने हृदय में परम श्रद्धा, भक्ति तथा तपस्यापूर्वक निरन्तर मेरा ध्यान करती रही, मैं तुम से अत्यन्त प्रसन्न

हुआ था। चूँकि मैं वर देने वालों में सर्वश्रेष्ठ हूँ, अतः मैं इसी कृष्ण रूप में प्रकट हुआ कि तुम मनवाञ्छित वर माँगो। तब तुमने मेरे सदृश पुत्र-प्राप्ति की इच्छा प्रकट की थी।

तात्पर्य : जो लोग स्वर्गलोक में रहते हैं उनके लिए बारह हजार दिव्य वर्ष दीर्घ काल नहीं है भले ही इस लोक के रहने वालों के लिए यह सुदीर्घ अन्तराल लगे। सुतपा ब्रह्मा का पुत्र था। *भगवद्गीता* से (८.१७) ज्ञात है कि ब्रह्मा का एक दिन हमारी गणना के लाखों वर्षों के तुल्य होता है (*सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः*)। हमें ध्यान रखना होगा कि कृष्ण जैसा पुत्र पाने के लिए कितनी महान् तपस्या करनी होती है। यदि हम चाहते हैं कि भगवान् हमारे बीच इस भौतिक जगत में प्रकट हों तो इसके लिए कठिन तपस्या की आवश्यकता होगी, किन्तु यदि हम कृष्ण के पास वापस जाना चाहें (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेतिऽर्जुन*) तो हमें केवल कृष्ण को समझना तथा उनसे प्रेम करना होगा। प्रेम के द्वारा ही हम भगवद्धाम वापस जा सकते हैं। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने घोषित किया—*प्रेमा पुमर्थो महान्*—भगवत्प्रेम किसी के लिए भी सर्वोच्च उपलब्धि है।

जैसाकि बतलाया जा चुका है, भगवान् की पूजा की तीन अवस्थाएँ होती हैं—*ज्ञान, ज्ञानमयी* तथा *रति*। सुतपा तथा उसकी पत्नी पृश्नि ने ज्ञान के आधार पर भक्ति कार्यों का शुभारम्भ किया था। धीरे-धीरे उनमें भगवान् के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ और जब यह प्रेम प्रौढ़ हो चुका तो भगवान् विष्णु रूप में प्रकट हुए। यद्यपि देवकी ने तब उनसे कृष्ण रूप धारण करने की प्रार्थना की थी। भगवान् से अधिक प्रेम करने के लिए हमें कृष्ण या राम रूप में भगवान् की कामना करनी चाहिए। हम कृष्ण के साथ प्रेम का आदान-प्रदान विशेष रूप से कर सकते हैं।

इस युग में हम सभी अधम हैं, किन्तु भगवान्, श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में, हम पर भगवत्प्रेम की वर्षा करने के लिए प्रकट हुए हैं। इसे श्री चैतन्य महाप्रभु के संगी समझते थे। रूप गोस्वामी ने कहा है—

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदायते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः॥

इस श्लोक में श्री चैतन्य महाप्रभु को *महावदान्य* अर्थात् सर्वाधिक दानी व्यक्ति कहा गया है क्योंकि वे इतनी आसानी से कृष्ण का दान देते हैं कि हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करने मात्र से मनुष्य

कृष्ण-प्राप्ति कर सकता है। अतएव हमें श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रदत्त वर का लाभ उठाना चाहिए और जब हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करने से हम सारे मैल से शुद्ध हो जाँय (*चेतोदर्पणमार्जनम्*) तो हम बड़ी आसानी से समझ सकेंगे कि कृष्ण ही एकमात्र प्रेम के लक्ष्य हैं (*कीर्तनाद् एव कृष्णस्य मुक्तसंग: परं व्रजेत्*)।

अत: मनुष्य को हजारों वर्षों तक घोर तपस्या करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। उसे कृष्ण से प्रेम करना सीखना होता है और उन्हीं की सेवा में सदा लगे रहना होता है (*सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यद:*)। तभी मनुष्य सरलता से भगवद्धाम वापस जा सकता है। यदि पुत्र रूप में या अन्य रूप में किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए अपने भौतिक कार्य हेतु भगवान् को यहाँ न बुलाकर हम स्वयं भगवद्धाम वापस चले जाते हैं, तो भगवान् के साथ हमारा असली सम्बन्ध प्रकट हो जाएगा और हम शाश्वत सम्बन्ध बनाए रख सकते हैं। हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करके हम धीरे-धीरे परम पुरुष के साथ शाश्वत सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं और हमें *स्वरूपसिद्धि* प्राप्त हो जाती है। हमें चाहिए कि इस वर का लाभ उठाकर भगवद्धाम वापस जाँय। इसीलिए श्रील नरोत्तमदास ठाकुर ने गाया है— *पतितपावनहेतु तव अवतार*—श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतार हम जैसे पतितात्माओं का उद्धार करने और भगवत्प्रेम प्रदान करने के लिए हुआ। हमें भगवान् के इस महान् वर का लाभ उठाना चाहिए।

अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दम्पती ।
न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितौ देवमायया ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

अजुष्ट-ग्राम्य-विषयौ—विषयी जीवन तथा मुझ जैसा बालक उत्पन्न करने के लिए; अनपत्यौ—सन्तानविहीन होने के कारण; च—भी; दम्-पती—पति-पत्नी दोनों; न—कभी नहीं; वव्राथे—माँगा (कोई वर); अपवर्गम्—इस जगत से मोक्ष; मे—मुझसे; मोहितौ—अत्यधिक आकर्षित होकर; देव-मायया—मेरे लिए दिव्य प्रेम के कारण (मुझे अपने पुत्र रूप में चाहकर)।

पति-पत्नी रूप में सन्तानहीन होने से आप लोग विषयी-जीवन के प्रति आकृष्ट हुए क्योंकि देवमाया के प्रभाव अर्थात् दिव्य प्रेम से तुम लोग मुझे अपने पुत्र के रूप में प्राप्त करना चाह रहे थे इसलिए तुम लोगों ने इस जगत से कभी भी मुक्त होना नहीं चाहा।

तात्पर्य : वसुदेव तथा देवकी सुतपा तथा पृश्नि के समय से ही पति-पत्नी (*दम्पति*) थे और वे भगवान् को पुत्र रूप में प्राप्त करने के उद्देश्य से पति-पत्नी बने रहना चाह रहे थे। यह अनुरक्ति *देवमाया* के प्रभाव से उत्पन्न हुई। कृष्ण से पुत्र रूप में प्रेम करना वैदिक सिद्धान्त है। वसुदेव तथा

देवकी ने कृष्ण को पुत्र रूप में पाने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहा फिर भी इस उद्देश्य के लिए भोग-विलास करने के लिए वे सामान्य गृहस्थ बने रहना चाहते थे। यद्यपि यह आध्यात्मिक शक्ति का विनिमय था, किन्तु उनकी इच्छा गृहस्थ जीवन में कामवासना के प्रति अनुरक्ति जैसी थी। जो व्यक्ति भगवद्धाम वापस जाना चाहता है उसे ऐसी इच्छाएँ त्याग देनी चाहिए। ऐसा तभी सम्भव है जब वह भगवान् के प्रति प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न कर ले। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है—

निष्किञ्चनस्य भगवद्जनोन्मुखस्य

पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।

(*चैतन्य-चरितामृत मध्य,* ११.८)

जो भगवद्धाम वापस जाना चाहता है उसे *निष्किंचन* अर्थात् समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त होना चाहिए। इसलिए यह चाहने के बदले कि भगवान् यहाँ आकर उसके पुत्र बनें, उसे समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाने की अभिलाषा करनी चाहिए (*अन्याभिलाषिता शून्यम्*) और भगवद्धाम वापस जाना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने *शिक्षाष्टक* में हमें शिक्षा दी है—

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

''हे सर्वशक्तिमान! मैं न तो धन एकत्र करना चाहता हूँ, न सुन्दर स्त्रियाँ चाहता हूँ, न ही अनेक अनुयायी चाहता हूँ। मैं तो जन्म-जन्मांतर आपकी केवल अहैतुकी भक्ति चाहता हूँ।'' मनुष्य को चाहिए कि वह भौतिकता से रंजित इच्छाओं को पूरी करने के लिए भगवान् से याचना न करे।

गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ।
ग्राम्यान्भोगानभुञ्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

गते मयि—मेरे चले जाने पर; युवाम्—तुम दोनों को (दम्पतियों को); लब्ध्वा—पाकर; वरम्—वरदान (पुत्र प्राप्ति का); मत्-सदृशम्—मेरी ही तरह के; सुतम्—पुत्र को; ग्राम्यान् भोगान्—भोग-विलास में व्यस्त रहना; अभुञ्जाथाम्—भोग किया; युवाम्—तुम दोनों को; प्राप्त—प्राप्त करके; मनोरथौ—अभिलाषाएँ।

जब तुम वर प्राप्त कर चुके और मैं अन्तर्धान हो गया तो तुम मुझ जैसा पुत्र प्राप्त करने के उद्देश्य से विषयभोग में लग गए और मैंने तुम्हारी इच्छा पूरी कर दी।

तात्पर्य : संस्कृत के शब्दकोश *अमरकोश* के अनुसार विषयी जीवन *ग्राम्य धर्म* कहलाता है

लेकिन आध्यात्मिक जीवन में इस ग्राम्य धर्म को अत्यधिक सराहा नहीं जाता। यदि किसी में भोजन करने, सोने, मैथुन करने तथा रक्षा करने की रंचभर भी लालसा रहती है, तो वह निष्किञ्चन नहीं रहता। किन्तु मनुष्य को निष्किंचन होना चाहिए। अत: संभोग द्वारा कृष्ण जैसा पुत्र उत्पन्न करने के लिए इच्छा से उसे मुक्त होना चाहिए। इस श्लोक में अपरोक्ष रूप में यही इंगित किया गया है।

अदृष्ट्वान्यतमं लोके शीलौदार्यगुणै: समम् ।
अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुत: ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

अदृष्ट्वा—न पाकर; अन्यतमम्—किसी अन्य को; लोके—इस जगत में; शील-औदार्य-गुणै:—शील तथा उदारता के गुणों से युक्त; समम्—तुम्हारे तुल्य; अहम्—मैं; सुत:—पुत्र; वाम्—तुम दोनों का; अभवम्—बना; पृश्नि-गर्भ:—पृश्नि से उत्पन्न हुआ; इति—इस प्रकार; श्रुत:—प्रसिद्ध हुआ।

चूँकि मुझे सरलता तथा शील के दूसरे गुणों में तुम जैसा बढ़ा-चढ़ा अन्य कोई व्यक्ति नहीं मिला अत: मैं पृश्नि-गर्भ के रूप में उत्पन्न हुआ।

तात्पर्य : त्रेतायुग में भगवान् पृश्निगर्भ के रूप में प्रकट हुए। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं— *पृश्निगर्भ इति सोऽयं त्रेतायुगावतारो लक्ष्यते।*

तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ।
उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामन: ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तयो:—तुम पति-पत्नी दोनों का; वाम्—दोनों में; पुन: एव—फिर से ही; अहम्—मैं; अदित्याम्—अदिति के गर्भ में; आस—प्रकट हुआ; कश्यपात्—कश्यपमुनि के वीर्य से; उपेन्द्र:—उपेन्द्र नाम से; इति—इस प्रकार; विख्यात:—सुप्रसिद्ध; वामनत्वात् च—तथा बौना बनने से; वामन:—वामन नाम से विख्यात।

मैं अगले युग में तुम दोनों से, माता अदिति तथा पिता कश्यप से पुन: प्रकट हुआ। मैं उपेन्द्र नाम से विख्यात हुआ और बौना होने के कारण मैं वामन भी कहलाया।

तृतीयेऽस्मिन्भवेऽहं वै तेनैव वपुषाथ वाम् ।
जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तृतीये—तीसरी बार; अस्मिन् भवे—इस रूप में (कृष्ण रूप के); अहम्—मैं; वै—निस्सन्देह; तेन—उसी व्यक्ति से; एव—इस तरह; वपुषा—रूप द्वारा; अथ—जिस तरह; वाम्—तुम दोनों के; जात:—उत्पन्न; भूय:—फिर से; तयो:—तुम दोनों का; एव—निस्सन्देह; सत्यम्—सत्य मानकर; मे—मेरे; व्याहृतम्—शब्द; सति—हे सती।

हे परम सती माता, मैं वही व्यक्ति अब तीसरी बार तुम दोनों के पुत्र रूप में प्रकट हुआ हूँ।

मेरे वचनों को सत्य मानें।

तात्पर्य : भगवान् अपने माता-पिता का चुनाव स्वयं करते हैं जिनसे उन्हें बारम्बार जन्म लेना पड़ता है। सर्वप्रथम भगवान् ने सुतपा तथा पृश्नि से, फिर कश्यप तथा अदिति से और अब उन्हीं माता-पिता वसुदेव-देवकी से जन्म लिया। भगवान् ने कहा, ''अन्य जन्मों में भी मैंने तुम लोगों का पुत्र बनने के लिए ही सामान्य शिशु का रूप धारण किया जिससे हम प्रेम का आदान-प्रदान कर सकें।'' श्रील जीव गोस्वामी ने *कृष्ण सन्दर्भ* (९६.३७) में बतलाया है कि *अमुना वपुषा* का अर्थ है ''उसी रूप के द्वारा।'' दूसरे शब्दों में, भगवान् ने देवकी से कहा, ''इस बार मैं अपने मूल श्रीकृष्ण-रूप में उत्पन्न हुआ हूँ।'' श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि अन्य रूप तो भगवान् के आदि रूप के अंश थे, किन्तु पृश्नि तथा सुतपा द्वारा जो प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न हुआ था उसके फलस्वरूप कृष्ण-रूप में भगवान् अपने समस्त ऐश्वर्यों समेत देवकी तथा वसुदेव से प्रकट हुए। इस श्लोक में भगवान् पुष्टि करते हैं, ''मैं वही भगवान् हूँ, किन्तु समस्त ऐश्वर्य समेत कृष्ण रूप में प्रकट हुआ हूँ।'' ''तेनैव वपुषा'' का यही तात्पर्य है। जब भगवान् ने पृश्नि-गर्भ का उल्लेख किया, तो उन्होंने—*तेनैव वपुषा* नहीं कहा, किन्तु उन्होंने देवकी को विश्वास दिलाया कि तीसरे जन्म में भगवान् कृष्ण प्रकट हुए हैं, उनका अंश नहीं। पृश्नि-गर्भ तथा वामन कृष्ण के अंशावतार थे, किन्तु तीसरे जन्म में साक्षात् कृष्ण प्रकट हुए। श्रील जीव गोस्वामी ने *कृष्ण सन्दर्भ* में यही व्याख्या दी है।

एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ।
नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ॥ ४४॥

शब्दार्थ

एतत्—विष्णु का यह रूप; वाम्—तुम दोनों को; दर्शितम्—दिखलाया गया; रूपम्—चतुर्भुज भगवान् के रूप में मेरा स्वरूप; प्राक्-जन्म—पूर्व जन्मों का; स्मरणाय—तुमको स्मरण दिलाने के लिए; मे—मेरा; न—नहीं; अन्यथा—अन्यथा; मत्-भवम्—विष्णु का प्राकट्य; ज्ञानम्—यह दिव्य ज्ञान; मर्त्य-लिङ्गेन—मानवी शिशु की तरह जन्म लेकर; जायते—उत्पन्न होता है।

मैंने तुम लोगों को यह विष्णु-रूप मात्र अपने पूर्वजन्मों का स्मरण कराने के लिए दिखलाया है। अन्यथा यदि मैं सामान्य बालक की तरह प्रकट होता तो तुम लोगों को विश्वास न हो पाता कि भगवान् विष्णु सचमुच प्रकट हुए हैं।

तात्पर्य : देवकी को यह बताए जाने की आवश्यकता नहीं थी कि भगवान् विष्णु उनके पुत्र रूप में प्रकट हुए थे, वे इसे पहले से स्वीकार कर चुकी थीं। फिर भी वे चिन्तित थीं कि यदि पड़ोसी सुनेंगे

कि उसके पुत्ररूप में विष्णु प्रकट हुए हैं, तो इस पर कोई विश्वास नहीं करेगा। इसलिए वे चाह रही थीं कि भगवान् विष्णु मानवी बालक का रूप धारण कर लें। दूसरी ओर भगवान् भी चिन्तित थे कि यदि वे सामान्य बालक के रूप में प्रकट हुए तो उनकी माता को विश्वास नहीं होगा कि भगवान् विष्णु प्रकट हुए हैं। भक्त तथा भगवान् के मध्य ऐसे ही व्यापार चलते हैं। भगवान् भक्तों के साथ मनुष्यों जैसा ही व्यवहार करते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे मनुष्य होते हैं क्योंकि ऐसा निर्णय तो अभक्तों का होता है (*अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्*)। भक्तगण भगवान् को हर परिस्थिति में पहचान लेते हैं। भक्त तथा अभक्त में यही अन्तर होता है। भगवान् कहते हैं—*मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु*—अपने मन को मेरे चिन्तन में लगाओ, मेरे भक्त बनो, मुझे ही नमस्कार करो तथा मेरी पूजा करो। अभक्त को यह विश्वास ही नहीं हो पाता कि किसी व्यक्ति का चिन्तन करने मात्र से इस भौतिक संसार से मुक्ति मिल सकती है और वह भगवद्धाम वापस जा सकता है। किन्तु यह यथार्थ है। भगवान् मनुष्य के रूप में आते हैं और यदि कोई भगवान् के साथ प्रेमाभक्ति द्वारा जुड़ जाता है, तो उसका वैकुण्ठ लोक जाना निश्चित हो जाता है।

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत् ।
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

युवाम्—तुम दोनों (पति-पत्नी); माम्—मुझको; पुत्र-भावेन—अपने पुत्र रूप में; ब्रह्म-भावेन—मुझे भगवान् के रूप में जानते हुए; च—तथा; असकृत्—निरन्तर; चिन्तयन्तौ—इस तरह सोचते हुए; कृत-स्नेहौ—प्रेम का बर्ताव करते हुए; यास्येथे—दोनों को प्राप्त होगा; मत्-गतिम्—मेरा परम धाम; पराम्—दिव्य।

तुम पति-पत्नी निरन्तर अपने पुत्र के रूप में मेरा चिन्तन करते हो, किन्तु तुम यह जानते रहते हो कि मैं भगवान् हूँ। इस तरह निरन्तर स्नेहपूर्वक मेरा चिन्तन करते हुए तुम लोग सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करोगे अर्थात् भगवद्धाम वापस जाओगे।

तात्पर्य : भगवान् द्वारा अपने माता-पिता को जो उनसे शाश्वत रूप से सम्बन्धित हैं, दिया गया यह उपदेश विशेष तौर पर उन व्यक्तियों के लिए है, जो भगवद्धाम वापस जाना चाहते हैं। मनुष्य को चाहिए कि भगवान् को कभी भी सामान्य मनुष्य न समझे जैसा अभक्त करते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण सशरीर प्रकट हुए थे और उन्होंने मानव समाज के लाभ के लिए अपने उपदेश छोड़े, किन्तु मूर्ख तथा मूढ़ उन्हें दुर्भाग्यवश सामान्य मनुष्य मानते हैं और *भगवद्गीता* के उपदेशों को मनमाने ढंग से

अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए तोड़ते मरोड़ते हैं। जो भी *भगवद्गीता* पर भाष्य लिखता है, एक तरह से वह अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए व्याख्या करता है। आजकल आधुनिक विद्वानों तथा राजनीतिज्ञों में यह विशेष रूप से फैशन बन चुका है कि वे *भगवद्गीता* की व्याख्या इस तरह करते हैं मानो वह कपोलकल्पित हो। वे अपनी गलत व्याख्याओं से अपना जीवन तो बिगाड़ते ही हैं अन्यों के भी जीवन को बिगाड़ते हैं। किन्तु कृष्णभावनामृत आन्दोलन इस आरोप के विरुद्ध लड़ रहा है कि कृष्ण काल्पनिक पुरुष हैं और कुरुक्षेत्र का युद्ध नहीं हुआ था; हर बात सांकेतिक है एवं *भगवद्गीता* में कुछ भी सत्य नहीं है। कुछ भी हो, यदि कोई सचमुच सफल बनना चाहता है, तो उसे *भगवद्गीता* यथारूप का पाठ करना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु *भगवद्गीता* के उपदेशों पर विशेष बल देते थे— *यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।* यदि कोई व्यक्ति जीवन में सर्वोच्च सफलता चाहता है, तो उसे *भगवद्गीता* को जिस प्रकार से श्रीकृष्ण ने कहा है उसी प्रकार से ग्रहण करना चाहिए। *भगवद्गीता* को इस रूप में स्वीकार करने से सारा मानव समाज पूर्ण तथा सुखी बन सकता है।

इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि चूँकि देवकी तथा वसुदेव कृष्ण को नन्द महाराज के निवासस्थान गोकुल ले जाने पर उनसे विलग हो जाएँगे, इसलिए साक्षात् भगवान् ने उन्हें आदेश दिया कि वे उन्हें अपने पुत्र तथा भगवान् के रूप में स्मरण किया करें। इससे वे उनके सम्पर्क में बने रहेंगे। भगवान् ११ वर्षों के बाद उनके पुत्र रूप में मथुरा लौटेंगे अत: उनके वियुक्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

श्रीशुक उवाच
इत्युक्त्वासीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया ।
पित्रो: सम्पश्यतो: सद्यो बभूव प्राकृत: शिशु: ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति उक्त्वा—इस तरह उपदेश देकर; आसीत्—रहे; हरि:—भगवान्; तूष्णीम्—मौन; भगवान्—भगवान् विष्णु; आत्म-मायया—अपनी आध्यात्मिक शक्ति से कार्य करते हुए; पित्रो: सम्पश्यतो:—यथार्थ रूप में माता-पिता द्वारा देखे जाकर; सद्य:—तुरन्त; बभूव—हो गये; प्राकृत:—सामान्य व्यक्ति की तरह; शिशु:—बालक।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अपने माता-पिता को इस तरह उपदेश देने के बाद भगवान् कृष्ण मौन रहे। तब उन्हीं के सामने अपनी अंतरंगा शक्ति से उन्होंने अपने आप को एक छोटे शिशु के रूप में बदल लिया। (दूसरे शब्दों में, उन्होंने स्वयं को अपने आदि रूप में रूपान्तरित

कर दिया—*कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्*)।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (४.६) में कहा गया है—*सम्भवाम्यात्ममायया*—भगवान् जो भी करते हैं अपनी आध्यात्मिक शक्ति से करते हैं, उन पर भौतिक शक्ति से किसी प्रकार का दबाव नहीं पड़ता। भगवान् तथा सामान्य जीव में यही अन्तर है। वेदों का कथन है (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.८) :

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते

स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च।

यह स्वाभाविक है कि भगवान् भौतिक गुणों के द्वारा रंजित नहीं होते और चूँकि उनकी आध्यात्मिक शक्ति में हर वस्तु सुचारु ढंग से उपस्थित रहती है अतएव वे जो भी इच्छा करते हैं, वह तुरन्त हो जाता है। भगवान् *प्राकृत शिशु* अर्थात् इस जगत के शिशु नहीं हैं, अपितु अपनी आत्मशक्ति से वे उस रूप में प्रकट हुए। सामान्य लोगों को परम नियन्ता भगवान् को मनुष्य रूप में स्वीकार करने में कठिनाई हो सकती है क्योंकि वे भूल जाते हैं कि भगवान् *आत्ममायया* अर्थात् आध्यात्मिक शक्ति से कुछ भी कर सकते हैं। अविश्वासी लोग कहते हैं ''परम नियन्ता किस तरह सामान्य व्यक्ति के रूप में अवतरित हो सकता है?'' ऐसी विचारधारा भौतिकतावादी सोच है। श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि भगवान् की शक्ति को हमारे शब्दों और मन की कल्पना के परे अर्थात् अचिन्त्य माने बिना हम उन्हें समझ नहीं सकते। जिन्हें इसमें सन्देह है कि भगवान् अपने को मानव रूप में अवतरित होकर, शिशु के रूप में उपस्थित कर सकते हैं, वे मूर्ख हैं क्योंकि वे कृष्ण के शरीर को भौतिक शरीर मानकर यह सोचते हैं कि वे जन्म लेते हैं और मरते भी हैं।

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध के चौथे अध्याय (४.२८-२९) में कृष्ण द्वारा शरीर परित्याग का वर्णन मिलता है। महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा, ''जब यदुवंश के सारे लोगों का अन्त हो गया तो कृष्ण ने भी अपना अन्त कर लिया और उनके परिवार में एकमात्र बचा रहने वाला व्यक्ति उद्धव था। ऐसा किस तरह सम्भव हुआ?'' शुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया कि कृष्ण ने आत्मशक्ति से सारे परिवार को विनष्ट कर दिया और तब अपने शरीर को अन्तर्धान करने का विचार किया। इस सम्बन्ध में शुकदेव गोस्वामी ने बतलाया है कि भगवान् ने किस तरह अपना शरीर छोड़ा। किन्तु यह कृष्ण के शरीर का विनाश नहीं था प्रत्युत यह भगवान् की आत्मशक्ति द्वारा उनका अन्तर्धान होना था।

वास्तव में भगवान् अपने शरीर का परित्याग नहीं करते क्योंकि वे शाश्वत हैं। जिस तरह वे विष्णु रूप से सामान्य शिशु का रूप धारण कर सकते हैं उसी तरह वे इच्छानुसार अपना शरीर किसी भी रूप में बदल सकते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि वे अपने शरीर का परित्याग करते हैं। वे अपनी दिव्य शक्ति से काष्ठ या पत्थर के बने विग्रह में प्रकट हो सकते हैं। वे अपने शरीर को किसी भी वस्तु में बदल सकते हैं क्योंकि हर वस्तु उन्हीं की शक्ति है (*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*)। *भगवद्गीता* (७.४) में स्पष्ट कहा गया है—*भिन्ना प्रकृतिरष्टधा*—सारे भौतिक तत्त्व भगवान् की भिन्ना शक्तियाँ हैं। यदि वे अपने शरीर को *अर्चामूर्ति* में परिणत कर देते हैं जिसे हम पत्थर या काष्ठ के रूप में देखते हैं, तो भी वे कृष्ण हैं। इसीलिए शास्त्र आगाह करता है—*अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिः।* जो व्यक्ति अर्चाविग्रह को काष्ठ या पत्थर का बना सोचता है, जो वैष्णव गुरु को सामान्य व्यक्ति मानता है या जो वैष्णव को भौतिक रूप में किसी विशेष जाति का मानता है, वह *नारकी* है अर्थात् नरक में वास करता है। भगवान् हमारे समक्ष इच्छानुसार अनेक रूपों में प्रकट हो सकते हैं, किन्तु हमें वास्तविकता जाननी चाहिए—*जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः* (*भगवद्गीता* ४.९)। साधु, गुरु तथा शास्त्र के उपदेशों का पालन करने से ही कृष्ण को समझा जा सकता है और मनुष्य भगवद्धाम वापस जाकर अपने जीवन को सफल बना सकता है।

ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः
सुतं समादाय स सूतिकागृहात् ।
यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा
या योगमायाजनि नन्दजायया ॥ ४७॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; च—निस्सन्देह; शौरिः—वसुदेव; भगवत्-प्रचोदितः—भगवान् से आज्ञा पाकर; सुतम्—अपने पुत्र को; समादाय—सावधानी से ले जाकर; सः—उसने; सूतिका-गृहात्—प्रसूतिगृह से, सौरी से; यदा—जब; बहिः गन्तुम्—बाहर जाने के लिए; इयेष—चाहा; तर्हि—तब, उस समय; अजा—न जन्म लेने वाली दिव्य शक्ति; या—जो; योगमाया—योगमाया ने; अजनि—जन्म लिया; नन्द-जायया—नन्द महाराज की पत्नी से।

तत्पश्चात् भगवान् की प्रेरणा से जब वसुदेव नवजात शिशु को सूतिकागृह से ले जाने वाले थे तो बिलकुल उसी क्षण भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति योगमाया ने महाराज नन्द की पत्नी की पुत्री के रूप में जन्म लिया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि कृष्ण एक ही समय देवकी के पुत्र तथा

यशोदा के पुत्र के रूप में आत्मशक्ति योगमाया के साथ उत्पन्न हुए। देवकी के पुत्र रूप में वे सर्वप्रथम विष्णु रूप में प्रकट हुए और वसुदेव ने अपने पुत्र की पूजा भगवान् विष्णु के रूप में की क्योंकि वे कृष्ण से शुद्ध स्नेह दिखला पाने की स्थिति में नहीं थे। किन्तु यशोदा अपने पुत्र कृष्ण को ईश्वर माने बिना ही प्रसन्न रखती थीं। यशोदा के पुत्र तथा देवकी के पुत्र कृष्ण में यही अन्तर है। *हरिवंश* के प्रमाण पर विश्वनाथ चक्रवर्ती ने यह व्याख्या की है।

तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु
द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ ।
द्वारश्च सर्वाः पिहिता दुरत्यया
बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः ॥ ४८ ॥
ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते
स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमो रवेः ।
ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः
शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन्फणैः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

तया—योगमाया के प्रभाव से; हृत-प्रत्यय—सारी अनुभूति से रहित; सर्व-वृत्तिषु—अपनी समस्त इन्द्रियों सहित; द्वाः-स्थेषु—सारे द्वारपाल; पौरेषु अपि—तथा घर के सारे लोग भी; शायितेषु—गहरी नींद में मग्न; अथ—जब वसुदेव ने अपने पुत्र को बन्दीगृह से बाहर ले जाने का प्रयास किया; द्वारः च—तथा दरवाजे भी; सर्वाः—सारे; पिहिताः—निर्मित; दुरत्यया—अत्यन्त कठोर तथा दृढ़; बृहत्-कपाट—तथा बड़े दरवाजे पर; आयस-कील-शृङ्खलैः—लोहे के काँटों से बने तथा लोहे की जंजीरों से बन्द किए गए; ताः—वे सब; कृष्ण-वाहे—कृष्ण को लिए हुए; वसुदेवे—जब वसुदेव; आगते—प्रकट हुए; स्वयम्—स्वयं; व्यवर्यन्त—खुल गए; यथा—जिस तरह; तमः—अँधेरा; रवेः—सूर्य के उदय होने पर; ववर्ष—पानी बरसे हुए; पर्जन्यः—आकाश में बादल; उपांशु-गर्जितः—मन्द गर्जना करते और रिमझिम बरसते; शेषः—अनन्त नाग; अन्वगात्—पीछे-पीछे चला; वारि—वर्षा की झड़ी; निवारयन्—रोकते हुए; फणैः—अपने फनों को फैलाकर।

योगमाया के प्रभाव से सारे द्वारपाल गहरी नींद में सो गए, उनकी इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो गईं और घर के अन्य लोग भी गहरी नींद में सो गए। जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर अंधकार स्वतः छिप जाता है उसी तरह वसुदेव के प्रकट होने पर लोहे की कीलों से जड़े तथा भीतर से लोहे की जंजीरों से जकड़े हुए बंद दरवाजे स्वतः खुल गए। चूँकि आकाश में बादल मन्द गर्जना कर रहे थे और झड़ी लगाए हुए थे अतः भगवान् के अंश अनन्त नाग दरवाजे से ही वसुदेव तथा दिव्य शिशु की रक्षा करने के लिए अपने फण फैलाकर वसुदेव के पीछे लग लिए।

तात्पर्य : शेषनाग भगवान् के अंश हैं और उनका काम है सारे साज-सामान के साथ भगवान् की सेवा करना। जब वसुदेव शिशु को लिए जा रहे थे तो शेषनाग भगवान् की सेवा करने तथा वर्षा की

हल्की-हल्की बूँदों से उन्हें बचाने के लिए प्रकट हुआ।

मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा
गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ।
भयानकावर्तशताकुला नदी
मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

मघोनि वर्षति—इन्द्र की वर्षा के कारण; असकृत्—निरन्तर; यम-अनुजा—यमुना नदी, जिसे यमराज की बहन माना जाता है; गम्भीर-तोय-ओघ—गहरे जल के; जव—वेग से; ऊर्मि—लहरों से; फेनिला—फेन से पूर्ण; भयानक—भयानक; आवर्त-शत—भँवरों से; आकुला—क्षुब्ध; नदी—नदी ने; मार्गम्—रास्ता; ददौ—दे दिया; सिन्धुः इव—समुद्र के समान; श्रियः पतेः—देवी सीता के पति भगवान् रामचन्द्र को।

इन्द्र द्वारा बरसायी गयी निरन्तर वर्षा के कारण यमुना नदी में पानी चढ़ आया था और उसमें भयानक भँवरों के साथ फेन उठ रहा था। किन्तु जिस तरह पूर्वकाल में हिन्द महासागर ने भगवान् रामचन्द्र को सेतु बनाने की अनुमति देकर रास्ता प्रदान किया था उसी तरह यमुना नदी ने वसुदेव को रास्ता देकर उन्हें नदी पार करने दी।

नन्दव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान्
गोपान्प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया ।
सुतं यशोदाशयने निधाय त-
त्सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

नन्द-व्रजम्—नन्द महाराज के गाँव या घर तक; शौरिः—वसुदेव; उपेत्य—पहुँचकर; तत्र—वहाँ; तान्—सारे लोगों को; गोपान्—सारे ग्वालों को; प्रसुप्तान्—सोया हुआ; उपलभ्य—जानकर; निद्रया—गहरी निद्रा में; सुतम्—पुत्र को (वसुदेव के पुत्र को); यशोदा-शयने—उस बिस्तर पर जिसमें यशोदा सो रही थीं; निधाय—रखकर; तत्-सुताम्—उसकी पुत्री को; उपादाय—लेकर; पुनः—फिर; गृहान्—अपने घर को; अगात्—लौट आया।

जब वसुदेव नन्द महाराज के घर पहुँचे तो देखा कि सारे ग्वाले गहरी नींद में सोए हुए थे। उन्होंने अपने पुत्र को यशोदा के पलँग में रख दिया, उसकी पुत्री को, जो योगमाया की अंश थी, उठाया और अपने घर कंस के बंदीगृह वापस लौट आए।

तात्पर्य : वसुदेव जानते थे कि ज्यों ही पुत्री कंस के बन्दीगृह में पहुँचेगी वह तुरन्त उसे मार डालेगा, किन्तु अपने पुत्र की रक्षा करने के लिए उन्हें अपने मित्र की सन्तान का वध कराना पड़ा। यद्यपि नन्द महाराज उनके मित्र थे, किन्तु अपने पुत्र के प्रति गहन स्नेह तथा अनुराग के कारण ही उन्होंने जानबूझ कर ऐसा होने दिया। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि किसी अन्य के

बालक की बलि देकर अपने बच्चे की रक्षा करने के लिए किसी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। साथ ही वसुदेव पर निर्दयता का दोष नहीं मढ़ा जा सकता क्योंकि वे जो कुछ कर रहे थे वह सब योगमाया के वशीभूत होकर कर रहे थे।

देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् ।
प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

देवक्याः—देवकी के; शयने—विस्तर पर; न्यस्य—रखकर; वसुदेवः—वसुदेव ने; अथ—इस प्रकार; दारिकाम्—लड़की को; प्रतिमुच्य—पुनः पहन कर; पदोः लोहम्—पाँवों की बेड़ियाँ; आस्ते—हो गया; पूर्व-वत्—पहले की तरह; आवृतः—बँधा हुआ।

वसुदेव ने लड़की को देवकी के पलँग पर रख दिया और अपने पाँवों में बेड़ियाँ पहन लीं तथा पहले की तरह बन गए।

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत ।
न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

यशोदा—यशोदा, गोकुल में कृष्ण की माता; नन्द-पत्नी—नन्द महाराज की पत्नी; च—भी; जातम्—उत्पन्न शिशु; परम्—परम पुरुष को; अबुध्यत—समझ गई; न—नहीं; तत्-लिङ्गम्—कि बालक नर है या मादा; परिश्रान्ता—अत्यधिक प्रसव पीड़ा के कारण; निद्रया—नींद के वशीभूत; अपगत-स्मृतिः—चेतना खोकर।

शिशु जनने की पीड़ा से थककर यशोदा नींद के वशीभूत हो गई और यह नहीं समझ पाईं कि उन्हें लड़का हुआ है या लड़की।

तात्पर्य : नन्द महाराज तथा वसुदेव घनिष्ठ मित्र थे तथा उनकी पत्नियाँ यशोदा तथा देवकी भी घनिष्ठ मित्र थीं। यद्यपि उनके नाम भिन्न थे, किन्तु एक तरह से वे अभिन्न थीं। अन्तर था तो इतना ही कि देवकी जानती थीं कि भगवान् उनसे जन्मे हैं और अब कृष्ण बन गए हैं, किन्तु यशोदा को यह भी पता नहीं था कि उसे लड़का हुआ है या लड़की। यशोदा इतनी महान् भक्त थीं कि उन्होंने कृष्ण को कभी भगवान् करके माना ही नहीं। वे तो उन्हें अपने पुत्र की तरह प्यार करती रहीं। किन्तु देवकी शुरू से ही जानती रहीं कि कृष्ण कहने को तो उनके पुत्र हैं, किन्तु हैं भगवान्। वृन्दावन में कृष्ण को कोई भी व्यक्ति भगवान् नहीं मानता था। जब कृष्ण कोई अनहोनी घटना कर बैठते तो वृन्दावन के सारे वासी—ग्वाले, ग्वालबाल, नन्द महाराज, यशोदा इत्यादि आश्चर्यचकित हो उठते, किन्तु उन्होंने अपने

पुत्र को कभी भी भगवान् नहीं माना। कभी-कभी वे यह कहते कि कृष्ण रूप में कोई बड़ा देवता प्रकट हुआ है। भक्ति की ऐसी चरमावस्था में भक्त कृष्ण के पद को भूल जाता है और भगवान् के पद को समझे बिना उनसे प्रगाढ़ प्रेम करता है। यह *केवल भक्ति* कहलाती है और ज्ञान तथा ज्ञानमयी भक्ति अवस्थाओं से सर्वथा भिन्न होती है।

इस तरह श्रीमद्भागवतम् के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण जन्म'' नामक तृतीय अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।